॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः॥

1300

महाकुम्भ-पर्व

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः।
मूले त्वस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्थिताः॥
कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः॥
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः।

'कलशके मुखमें विष्णु, कण्ठमें रुद्र, मूल भागमें ब्रह्मा, मध्य भागमें मातृगण, कुक्षिमें समस्त समुद्र, पहाड़ और पृथ्वी रहते हैं और अंगोंके सहित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद भी रहते हैं।'

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०६९ छठा पुनर्मुद्रण १०,०००
कुल मुद्रण ८०,०००

❖ **मूल्य—५ रु०**
(पाँच रुपये)

प्रकाशक एवं मुद्रक—
गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स : (०५५१) २३३६९९७
e-mail : **booksales@gitapress.org** website : **www.gitapress.org**

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

'चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि।' (अथर्व० ४। ३४। ७)

मानव-जीवनका परम एवं चरम लक्ष्य है—अमृतत्वकी प्राप्ति। अनादिकालसे अमृतत्वसे विमुख मनुष्य उसी अमृतत्वकी खोजमें सतत प्रयत्नशील है। क्यों न हो! उसे जो स्वतः प्राप्त है, किन्तु अपने ही द्वारा की गयी भूलके कारण वह उससे विमुख हुआ है। वेद, पुराण, इतिहास, ऋषि और महर्षि उसी परम लक्ष्यकी प्राप्तिकी दिशामें अग्रसर होनेके लिये निरन्तर पथप्रदर्शककी भूमिकाका निर्वाह करते आये हैं।

मनुष्यके अचेतन मनमें दैवी एवं आसुरी दोनों प्रवृत्तियाँ विद्यमान रहती हैं, जो अवसर पाकर उद्दीप्त हो उठती हैं। फलस्वरूप दैव तथा इसके विपरीत आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्योंमें सतत संघर्ष होते रहते हैं। परन्तु आसुरी प्रवृत्तियाँ चाहे जितनी भी सबल क्यों न हों, अन्तमें विजयश्री दैवी प्रकृतिवालोंका ही वरण करती है; क्योंकि हमारी संस्कृतिका ध्रुवसत्य सिद्धान्त है—'**सत्यमेव जयते**'।

पुराणवर्णित देवासुर-संग्राम एवं समुद्र-मन्थनद्वारा अमृत-प्राप्तिके आख्यानसे यह स्पष्ट होता है कि भगवान्‌ने स्वयं मोहिनीरूप धारण कर दैवी प्रकृतिवाले देवताओंको अमृत-पान कराया था। अमृत-कुम्भकी उत्पत्ति-विषयक उक्त आख्यानके परिप्रेक्ष्यमें भारतवर्षमें प्रति द्वादश वर्षमें हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिकमें कुम्भ-पर्वका आयोजन होता रहता है।

कुम्भ-पर्वके माहात्म्यको प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि 'कुम्भ-पर्वमें जानेवाला मनुष्य स्वयं दान-होमादि सत्कर्मोंके फलस्वरूप अपने पापोंको वैसे ही नष्ट करता है, जैसे कुठार वनको काट देता है। जिस प्रकार गंगा नदी अपने तटोंको काटती हुई प्रवाहित होती है, उसी प्रकार कुम्भ-पर्व मनुष्यके पूर्वसंचित कर्मोंसे प्राप्त हुए शारीरिक पापोंको नष्ट करता है और नूतन (कच्चे) घड़ेकी तरह बादलको नष्ट-भ्रष्टकर संसारमें सुवृष्टि प्रदान करता है'।

कुम्भ-पर्वकी इसी महत्तासे अभिभूत होकर प्रायः समस्त धर्मावलम्बी अपनी आस्थाको हृदयमें सँजोये हुए अमृतत्वकी लालसामें उन-उन स्थानोंपर पहुँचते हैं। विश्वके विपुल जनसमुदायको देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मानो अव्यक्त (अमृत)-की ही अभिव्यक्ति हुई हो। उस अनन्त, अव्यक्त अमृतके अभिलाषी कुम्भमें पधारते रहते हैं।

साधारण जन-मानस भी इस महापर्वके माहात्म्यके विषयमें अनभिज्ञ न रहे, इसी अभावकी पूर्तिकी दिशामें प्रस्तुत पुस्तक एक लघु प्रयास है। अल्प साधन एवं समयमें किसी बड़े लक्ष्यको प्राप्त करना अत्यन्त दुष्कर कार्य होता है, उसमें भी प्रामाणिकताकी कसौटीपर खरा उतरना और भी दुरूह है। किन्तु संसारके प्रायः समस्त शुभ कार्य भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे ही सम्पन्न होते हैं, मनुष्य तो एक निमित्तमात्र है। प्रस्तुत पुस्तक 'महाकुम्भ-पर्व' भी उसी परम प्रभुकी अहैतुकी कृपाका ही सुफल है।

प्रस्तुत पुस्तकको यथासामर्थ्य प्रामाणिक बनानेका भरसक प्रयास किया गया है। इसकी कथाका आधारस्त्रोत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, स्कन्दपुराण, शिवपुराण, नारदपुराण, पद्मपुराण, महाभारत तथा पं० श्रीवेणीराम शर्मा गौड़-प्रणीत 'कुम्भपर्व-माहात्म्य', कल्याण-पत्रिका, हृषीकेश पंचांग तथा चिन्ताहरण पंचांग आदि हैं।

अत्यल्प समयमें भगवत्कृपासे जो कुछ सम्भव हो सका है, वह आपकी सेवामें समर्पित है। सहृदय विद्वानोंसे हमारी प्रार्थना है कि वे इस पुस्तककी भूलोंको क्षमा करेंगे।

आशा एवं पूर्ण विश्वास है कि श्रद्धालुजन इस पुस्तकसे अवश्य लाभ उठायेंगे।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ-संख्या**

❑ ❑

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

महाकुम्भ-पर्व—एक परिचय

प्राचीनकालसे ही हमारी महान् भारतीय संस्कृतिमें तीर्थोंके प्रति और उनमें होनेवाले पर्वविशेषके प्रति बहुत आदर तथा श्रद्धा-भक्तिका अस्तित्व विराजमान है। भारतीय संस्कृतिमें किसी पुण्य-पर्व, धार्मिक कृत्य, संस्कार, अनुष्ठान तथा पवित्र समारोह और उत्सव आदिके आयोजन मात्र प्रदर्शन, आत्मतुष्टि या मनोरंजन आदिकी दृष्टिसे नहीं किये जाते, अपितु प्राय: ऐसे धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयोजनोंका मुख्य उद्देश्य होता है—आत्मशुद्धि और आत्मकल्याण। इसी प्रकार धार्मिक अनुष्ठान या पर्वोंके आयोजनमें भी न केवल परम्पराका अनुपालन, अपितु शास्त्रानुमोदित प्राचीन भारतीय (वैदिक) संस्कृतिकी गरिमासे मण्डित पद्धतिके निर्वहणका सुप्रयास भी निहित रहता है।

प्राचीनकालमें तत्त्ववेत्ता ऋषियोंद्वारा मोक्ष-कामना तथा लोक-कल्याणकी शुभ भावनासे प्रेरित होकर गंगा आदि नदियोंके तटों तथा प्रयाग, हरिद्वार आदि पवित्र स्थलोंपर ज्ञानसत्रके आयोजन धर्मचर्चा तथा भगवत्-लीला-श्रवणके प्रसंग एक तरफ जहाँ हमारी आध्यात्मिक परम्पराके द्योतक हैं, वहीं दूसरी ओर वर्तमान जगत्के लिये प्रेरणादायक भी हैं। ऋषि-महर्षि, साधु-सन्त और विद्वत्-जनोंका समागम राष्ट्रकी ऐहिक तथा पारलौकिक व्यवस्थापर विचार-विमर्शका हेतु था। इससे समाजको नवीन चेतना प्राप्त होती थी और देश-काल एवं वातावरणपर धार्मिक महत्ताका वर्चस्व भी स्थापित होता था। इस प्रकार इस प्रणालीसे भारतीय समाजके विघटनको रोका जाता था। साथ-ही-साथ यह सद्विचारोंके प्रसार एवं संगठनकी एक स्वस्थ व्यवस्था थी। इसके द्वारा आत्मीयता एवं धार्मिक सौहार्दका वातावरण तैयार करने तथा सामाजिक समन्वय एवं अखण्ड राष्ट्रकी परिकल्पनाको भलीभाँति साकार करनेमें सहायता मिलती थी।

कुम्भ-पर्वके सम्बन्धमें वेदोंमें अनेक महत्त्वपूर्ण मन्त्र मिलते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि कुम्भ-पर्व अत्यन्त प्राचीन और वैदिक धर्मसे ओत-प्रोत है—

जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून्।
बिभेद गिरिं नवभिन्न कुम्भभा गा इन्द्रो अकृणुत स्वयुग्भिः॥

(ऋग्वेद १०। ८९। ७)

'कुम्भ-पर्वमें जानेवाला मनुष्य स्वयं दान-होमादि सत्कर्मोंके फलस्वरूप अपने पापोंको वैसे ही नष्ट करता है जैसे कुठार वनको काट देता है। जिस प्रकार गंगा नदी अपने तटोंको काटती हुई प्रवाहित होती है, उसी प्रकार कुम्भ-पर्व मनुष्यके पूर्वसंचित कर्मोंसे प्राप्त हुए शारीरिक पापोंको नष्ट करता है और नूतन (कच्चे) घड़ेकी तरह बादलको नष्ट-भ्रष्टकर संसारमें सुवृष्टि प्रदान करता है।'

'कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषिक्ता।'

(ऋग्वेद)

'हे कुम्भ-पर्व! तुम यज्ञीय वेदीमें यज्ञीय आयुधोंसे घृतद्वारा तृप्त होनेके कारण कष्टानुभव मत करो।'

युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरंधिम्।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः॥

(ऋग्वेद १। ११६। ७)

कुम्भो वनिष्टुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो अन्तः।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधारउत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः॥

(शुक्लयजुर्वेद १९। ८७)

'कुम्भ-पर्व सत्कर्मके द्वारा मनुष्यको इहलोकमें शारीरिक सुख देनेवाला और जन्मान्तरोंमें उत्कृष्ट सुखोंको देनेवाला है।'

आविशन्कलशꣳ सुतो विश्वा अर्षन्नभिश्रियः। इन्दुरिन्द्राय धीयते॥

(सामवेद, पू० ६। ३)

पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्कालं तमाहुः परमे व्योमन॥

(अथर्ववेद १९। ५३। ३)

'हे सन्तगण! पूर्णकुम्भ बारह वर्षके बाद आया करता है, जिसे हम अनेक बार प्रयागादि तीर्थोंमें देखा करते हैं। कुम्भ उस समयको कहते हैं जो महान् आकाशमें ग्रह-राशि आदिके योगसे होता है।'

और भी कहा है—

(क) **‘चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि।’** (अथर्व० ४। ३४। ७)

ब्रह्मा कहते हैं—‘हे मनुष्यो! मैं तुम्हें ऐहिक तथा आमुष्मिक सुखोंको देनेवाले चार कुम्भ-पर्वोंका निर्माण कर चार स्थानों (हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक)-में प्रदान करता हूँ।’

(ख) **‘कुम्भीका दूषीकाः पीयकान्।’** (अथर्व० १६। ६। ८)

❑❑

अमृत-कुम्भकी अवधारणा

वर्तमान समयमें भी वसुधाके ओर-छोरतक किसी-न-किसी रूपमें अखिलकोटिब्रह्माण्डनायक उस परम प्रभुकी व्यापक शासन-शक्ति धर्मरूपसे निर्बाध दृष्टिगोचर हो रही है। वर्णाश्रमियोंकी सुदृढ़ताका ही फल है कि परमपिता परमेश्वर भी सदेह धरातलपर अवतीर्ण होकर सज्जन, साधु-रक्षा एवं दुष्टोंका संहार कर पृथ्वीका भार हलका करनेमें अग्रसर होते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(गीता ४। ७-८)

नाना प्रकारके पर्वोंका सर्जन भी धार्मिक विज्ञानोंद्वारा ही हुआ था। सबके मूलमें कोई-न-कोई अलौकिक विशेषता विद्यमान रहती है जिसे विचारशील ही समझ पाते हैं। इन्हीं महापर्वोंमें कुम्भ-पर्व भी है जो कि भारतके हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक—इन चार स्थानोंमें मनाया जाता है।

वैसे ‘कुम्भ’ शब्दका अर्थ साधारणतः घड़ा ही है, किन्तु इसके पीछे जनसमुदायमें पात्रताके निर्माणकी रचनात्मक शुभभावना, मंगलकामना एवं जन-मानसके उद्धारकी प्रेरणा निहित है।

यथार्थतः ‘कुम्भ’ शब्द समग्र सृष्टिके कल्याणकारी अर्थको अपने-आपमें समेटे हुए है—

कुं पृथ्वीं भावयन्ति संकेतयन्ति भविष्यत्कल्याणादिकाय महत्याकाशे

स्थिताः बृहस्पत्यादयो ग्रहाः संयुज्य हरिद्वारप्रयागादितत्तत्पुण्यस्थान-विशेषानुद्दिश्य यस्मिन् सः कुम्भः।

'पृथ्वीको कल्याणकी आगामी सूचना देनेके लिये या शुभ भविष्यके संकेतके लिये हरिद्वार, प्रयाग आदि पुण्य-स्थानविशेषके उद्देश्यसे निर्मल महाकाशमें बृहस्पति आदि ग्रहराशि उपस्थित हों जिसमें, उसे 'कुम्भ' कहते हैं।'

इसके अतिरिक्त अन्यान्य जन-कल्याणकारी भावोंको भी 'कुम्भ' शब्दके शब्दार्थमें देखा जा सकता है।

पुराणोंमें कुम्भ-पर्वकी स्थापना बारहकी संख्यामें की गयी है, जिनमेंसे चार मृत्युलोकके लिये और आठ देवलोकोंके लिये हैं—

देवानां द्वादशाहोभिर्मर्त्यैर्द्वादशवत्सरैः।
जायन्ते कुम्भपर्वाणि तथा द्वादश संख्यया॥
पापापनुत्तये नृणां चत्वारि भुवि भारते।
अष्टौ लोकान्तरे प्रोक्ता देवैर्गम्या न चेतरैः॥

भूमण्डलके मनुष्यमात्रके पापको दूर करना ही कुम्भकी उत्पत्तिका हेतु है। यह पर्व प्रत्येक बारहवें वर्ष हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक—इन चारों स्थानोंमें होता रहता है। इन पर्वोंमें भारतके सभी प्रान्तोंसे समस्त सम्प्रदायवादी स्नान, ध्यान, पूजा-पाठादि करनेके लिये आते हैं।

क्षार-समुद्रसे पर्यवेष्टित भारतभूमि स्वभावतः मलिनताके कलंक-पंकसे युक्त है। यह पुण्यप्रक्षालित भूमि है। भौगोलिक दृष्टिसे इसके चार पवित्र स्थानोंमें उस अमृत-कुम्भकी प्रतिष्ठा हुई थी, जो उस समुद्र-मन्थनसे उद्भूत हुआ था।

कालिक दृष्टिसे ऐसे ग्रहयोग जो खगोलमें लुप्त-सुप्त अमृतत्वको प्रत्यक्ष और प्रबुद्ध कर देते हैं, चारों स्थानोंमें बारह-बारह वर्षपर अर्थात् द्वादश वर्षात्मक कालयोगसे प्रकट होते हैं। तब गंगा (हरिद्वार), त्रिवेणीजी (प्रयाग), शिप्रा (उज्जैन) और गोदावरी (नासिक)—ये पतितपावनी नदियाँ अपनी जलधारामें अमृतत्वको प्रवाहित करती हैं। अर्थात् देश, काल एवं वस्तु तीनों अमृतके प्रादुर्भावके योग्य हो जाते हैं। फलस्वरूप अमृतघट या कुम्भका अवतरण होता है।

कालचक्र न केवल जीवनके क्रिया-कलापका मूलाधार है; अपितु समस्त यज्ञकर्म, अनुष्ठान एवं संस्कार आदि भी कालचक्रपर आधारित हैं। कालचक्रमें सूर्य, चन्द्रमा एवं देवगुरु बृहस्पतिका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन तीनोंका योग ही कुम्भ-पर्वका प्रमुख आधार है। जब बृहस्पति मेष राशिपर तथा चन्द्रमा-सूर्य मकर राशिपर स्थित हों तब प्रयागमें अमावास्या तिथिको अति दुर्लभ कुम्भ होता है। इस स्थितिमें सभी ग्रह मित्रतापूर्ण और श्रेष्ठ होते हैं। हमारे जीवनमें जब मित्र और श्रेष्ठजनोंका मिलन होता है तभी श्रेष्ठ एवं शुभ विचारोंका उदय होता है और हमारे जीवनमें यह योग ही सुखदायक होता है।

कुम्भके अवसरपर भारतीय संस्कृति और धर्मसे अनुप्राणित सभी सम्प्रदायोंके धर्मानुयायी एकत्रित होकर अपने समाज, धर्म एवं राष्ट्रकी एकता, अखण्डता, अक्षुण्णताके लिये विचार-विमर्श करते हैं। स्नान, दान, तर्पण तथा यज्ञका पवित्र वातावरण देवताओंको भी आकृष्ट किये बिना नहीं रहता। ऐसी मान्यता है कि इस महापर्वपर सभी देवगण तथा अन्य पितर—यक्ष-गन्धर्व आदि पृथ्वीपर उपस्थित होकर न केवल मनुष्यमात्र, अपितु जीवमात्रको अपनी पावन उपस्थितिसे पवित्र करते रहते हैं।

❑❑

अमृत-कुम्भका स्वरूप एवं प्रार्थना-मन्त्र

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः।
मूले त्वस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्थिताः॥
कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः॥
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः।

‘कलशके मुखमें विष्णु, कण्ठमें रुद्र, मूल भागमें ब्रह्मा, मध्य भागमें मातृगण, कुक्षिमें समस्त समुद्र, पहाड़ और पृथ्वी रहते हैं और अंगोंके सहित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद भी रहते हैं।’

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम्॥

त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः॥
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः॥
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः॥

'हे कुम्भ! देव-दानवके विवादरूपमें समुद्रके मथे जानेपर तुम्हारी उत्पत्ति हुई, जिसे साक्षात् भगवान् विष्णुने धारण किया। उस तुम्हारे जलमें समस्त तीर्थ, समस्त देवता, समस्त प्राणी, प्राण आदि स्थित रहते हैं। तुम साक्षात् शिव, विष्णु और ब्रह्मा हो। आदित्य, वसु, रुद्र, सपैतृक विश्वेदेव आदि समस्त कार्योंके फलप्रद देवता तुम्हारेमें सर्वदा स्थित रहते हैं।'

❑❑

कुम्भोत्पत्तिकी अमरकथा

एक समयकी बात है, दैत्यों और दानवोंने बड़ी भारी सेना लेकर देवताओंपर चढ़ाई की। उस युद्धमें दैत्योंके सामने देवता परास्त हो गये, तब इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता अग्निको आगे करके ब्रह्माजीकी शरणमें गये। वहाँ उन्होंने अपना सारा हाल ठीक-ठीक कह सुनाया। ब्रह्माजीने कहा—'तुमलोग मेरे साथ भगवान्‌की शरणमें चलो।' यह कहकर वे सम्पूर्ण देवताओंको साथ ले क्षीरसागरके उत्तर-तटपर गये और भगवान् वासुदेवको सम्बोधित करके बोले—'विष्णो! शीघ्र उठिये और इन देवताओंका कल्याण कीजिये। आपकी सहायता न मिलनेसे दानव इन्हें बारम्बार परास्त करते हैं।' उनके ऐसा कहनेपर कमलके समान नेत्रवाले भगवान् अन्तर्यामी पुरुषोत्तमने देवताओंके शरीरकी अवस्था देखकर कहा—'देवगण! मैं तुम्हारे तेजकी वृद्धि करूँगा। मैं जो उपाय बतलाता हूँ, उसे तुमलोग करो। दैत्योंके साथ मिलकर सब प्रकारकी ओषधियाँ ले आओ और उन्हें क्षीरसागरमें डाल दो। फिर मन्दराचलको मथानी और वासुकि नागको नेती (रस्सी) बनाकर समुद्रका मन्थन करते हुए उससे अमृत निकालो। इस कार्यमें मैं तुमलोगोंकी सहायता करूँगा। समुद्रका मन्थन करनेपर जो अमृत निकलेगा, उसका पान करनेसे तुमलोग बलवान् और अमर हो जाओगे।'

देवाधिदेव भगवान्के ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण देवता दैत्योंके साथ सन्धि करके अमृत निकालनेके यत्नमें लग गये—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कलशोत्पत्तिमुत्तमाम्।
उत्तरे हिमवत्पार्श्वे क्षीरोदो नाम सागरः॥
आरब्धं मन्थनं तत्र देवैर्दानवपूर्वकैः।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम्॥
मूले कूर्मन्तु संस्थाप्य विष्णोर्बाहू च मन्दरे।
एकत्र देवताः सर्वे बलिमुख्यास्तथैकतः॥
मथ्यमाने तदा तस्मिन् क्षीरोदे सागरोत्तमे।
उत्पन्नं गरलं पूर्वं शम्भुना भक्षितं च तत्॥
अथ स्वास्थ्यं गते लोके प्रकथ्यन्तेऽद्य तानि हि।
उत्पन्नानि च रत्नानि यानि तत्र महान्ति च॥
विमानं पुष्पकं पूर्वमुत्तमं हंसवाहनम्।
नाग ऐरावतश्चैव पादपः पारिजातकः॥
वीणावाद्यान्तरं चैव रम्भा नृत्यगुणान्विता।
मणिरत्नं कौस्तुभाख्यं बालचन्द्रस्तथैव च॥
कुण्डलानि धनुश्चैव गावः पञ्च शिवास्तथा।
लक्ष्मीः सुरूपा यमुना सुशीला सुरभिस्तथा॥
उच्चैःश्रवाः समुत्पन्नो लक्ष्मीश्च वरवर्णिनी।
तथा धन्वन्तरिर्देवो विश्वकर्मा कलाविदः॥
कलशश्च समुद्भूतो धन्वन्तरिकरोल्लसन्।
मुखान्तं सुधया पूर्णः सर्वेषां हि मनोहरः॥
अजितस्य पदाम्भोजकृपयैव समुद्गतम्।
क्षीराब्धिलोडनोद्भूतं कलशान्तेन्द्ररत्नकम्॥
दृष्ट्वा तु तत्क्षणादेव महाबलपराक्रमः।
जयन्तोऽमृतमादाय गतो देवप्रचोदितः॥
देवकर्मसमालोच्य तदा दैत्यपुरोधसा।
नागोच्छ्वासप्रव्यथिता दैत्याः शुक्रेण सूचिताः॥
जग्मुस्ते पृष्ठतो लग्ना भीतः सोऽपि पलायितः।
दिशो दश दिवारात्रं द्वादशाहं प्रपीडितः॥

दैत्यैर्गृहीतस्तद्धस्तात् तेनापि पुनरेव सः।
अहं पिबेयं पूर्वं तु न त्वञ्चेति विचुक्रुधुः॥
एवं विवदमानेषु काश्यपेषु सुधाग्रहे।
भगवान् मोहयित्वा तान् मोहिन्या विभजत् सुधाम्॥
विवादे काश्यपेयानां यत्र यत्रावनिस्थले।
कलशो न्यपतत्तत्र कुम्भपर्व तदोच्यते॥
गुर्वीन्द्वर्कस्वपुत्रैश्च कुम्भोऽरक्षि निपातितः।
कलहाक्रान्तचेतोभिर्दैत्यैः शुक्रप्रचोदितैः॥
चन्द्रः प्रस्रवणाद्रक्षां सूर्यो विस्फोटनाद्दधौ।
दैत्येभ्यश्च गुरू रक्षां शौरिदेवेन्द्रजाद् भयात्॥
सूर्येन्दुगुरुसंयोगस्तद्राशौ यत्र वत्सरे।
सुधाकुम्भप्लवे भूमौ कुम्भो भवति नान्यथा॥
देवानां द्वादशाहोभिर्मर्त्यैर्द्वादशवत्सरैः।
जायन्ते कुम्भपर्वाणि तथा द्वादश संख्यया॥
तत्राघनुत्तये नृणां चत्वारो भुवि भारते।
अष्टौ लोकान्तरे प्रोक्ता देवैर्गम्या न चेतरैः॥
तान्येति यः पुमान् योगे सोऽमृतत्वाय कल्पते।
देवा नमन्ति तत्रस्थान् यथा रङ्का धनाधिपान्॥
पृथिव्यां कुम्भयोगस्य चतुर्धा भेद उच्यते।
विष्णुद्वारे तीर्थराजेऽवन्त्यां गोदावरीतटे॥
सुधाविन्दुविनिक्षेपात् कुम्भपर्वेति विश्रुतम्॥

(स्कन्दपुराण)

'तत्पश्चात् देवता और दानवोंने पृथ्वीके उत्तर भागमें हिमालयके समीप क्षीरोदसिन्धुमें मन्थन किया, जिसमें मन्दराचल 'मन्थनदण्ड' था, वासुकी 'नेती' थे, कच्छपरूपधारी भगवान् मन्दराचलके पृष्ठभाग थे और भगवान् विष्णु उक्त मन्थन-दण्डको पकड़े हुए थे, तदनन्तर उस क्षीरसागरसे चौदह रत्न—लक्ष्मी, कौस्तुभ, पारिजात, सुरा, धन्वन्तरि, चन्द्रमा, गरल, पुष्पक, ऐरावत, पांचजन्य शंख, रम्भा, कामधेनु, उच्चैःश्रवा और अमृत-कुम्भ निकले। उन्हीं रत्नोंमेंसे अमृत-कुम्भके निकलते ही देवताओंके इशारेसे

इन्द्रपुत्र 'जयन्त' अमृत-कलशको लेकर आकाशमें उड़ गया। उसके बाद दैत्यगुरु शुक्राचार्यके आदेशानुसार दैत्योंने अमृतको वापस लेनेके लिये जयन्तका पीछा किया और घोर परिश्रमके बाद उन्होंने बीच रास्तेमें ही जयन्तको पकड़ा। तत्पश्चात् अमृत-कलशपर अधिकार जमानेके लिये देव-दानवोंमें बारह दिनतक अविराम युद्ध होता रहा। परस्पर इस मार-काटके समयमें पृथिवीके चार स्थानों (प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन, नासिक)-पर कलश गिरा था, उस समय चन्द्रमाने घटसे प्रस्रवण होनेसे, सूर्यने घट फूटनेसे, गुरुने दैत्योंके अपहरणसे एवं शनिने देवेन्द्रके भयसे घटकी रक्षा की। कलह शान्त करनेके लिये भगवान्ने मोहिनीरूप धारण कर यथाधिकार सबको अमृत बाँटकर पिला दिया। इस प्रकार देव-दानव-युद्धका अन्त किया गया।

अमृत-प्राप्तिके लिये देव-दानवोंमें परस्पर बारह दिनपर्यन्त निरन्तर युद्ध हुआ था। देवताओंके बारह दिन मनुष्योंके बारह वर्षके तुल्य होते हैं। अतएव कुम्भ भी बारह होते हैं। उनमेंसे चार कुम्भ पृथ्वीपर होते हैं और अवशिष्ट आठ कुम्भ देवलोकमें होते हैं, जिन्हें देवगण ही प्राप्त कर सकते हैं, मनुष्योंकी वहाँ पहुँच नहीं है। जिस समयमें चन्द्रादिकोंने कलशकी रक्षा की थी, उस समयकी वर्तमान राशियोंपर रक्षा करनेवाले चन्द्र-सूर्यादिक ग्रह जब आते हैं, उस समय कुम्भका योग होता है अर्थात् जिस वर्ष, जिस राशिपर सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पतिका संयोग होता है उसी वर्ष, उसी राशिके योगमें जहाँ-जहाँ अमृत-कुम्भ-सुधा-विन्दु गिरा था, वहाँ-वहाँ कुम्भ-पर्व होता है।'

❑❑

कुम्भ-पर्वका उद्देश्य एवं आध्यात्मिक रहस्य

हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक—इन चार कुम्भ-पर्वके निर्णीत स्थानोंमें कुम्भ-योगके समय तत्तत्सम्प्रदाय, सम्मानित साधु-महात्माओंके समवायद्वारा संसारके सर्वविध कष्टोंके निवृत्त्यर्थ देश, समाज, राष्ट्र और धर्म आदि समस्त विश्वके कल्याण-सम्पादनार्थ निष्काम-भावनापुरस्सर वेदादि शास्त्रानुकूल अमूल्य दिव्य उपदेशोंसे जगत्कल्याण करना ही 'कुम्भ-पर्व' का महान् उद्देश्य है।

कुम्भ-पर्वके आध्यात्मिक रहस्यके विषयमें विचार करनेपर ज्ञात होता है कि जो गृहस्थ मनुष्य 'पंचाग्नि विद्या' को जानते हैं तथा जो वानप्रस्थी, संन्यासी या नैष्ठिक ब्रह्मचारिगण सांसारिक विषय-वासनाओंसे विरक्त होकर श्रद्धापूर्वक तप तथा सत्य-पालनादिका आचरण करते हैं, वे उत्तरायण-मार्गसे अर्थात् अर्चिमार्गसे सूर्यलोक होते हुए 'ब्रह्मलोक' जाते हैं। वहाँ अनेक कल्पतक निवास कर पुनः जिस मार्गसे वे गये थे उसी मार्गसे लौटकर इन्द्रादि लोकोंमें ही रहते हैं और वे भूलोकमें नहीं आते। इन्द्रादि लोकोंमें रहते हुए सौभाग्यवश गुरूपदेशद्वारा ज्ञानप्राप्ति हो जानेके कारण मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है, जिससे वे इस संसारमें नहीं आते हैं, प्रत्युत ब्रह्ममें ही लीन हो जाते हैं और जो साधारण गृहस्थजन ग्राममें ही रहते हुए इष्ट—अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म तथा पूर्त्त—वापी, कूप-तड़ागादि प्रतिष्ठा तथा दान, यज्ञ आदिका आचरण करते हैं, वे दक्षिणायन-मार्गसे अर्थात् धूम-मार्गसे 'चन्द्रलोक' जाते हैं। वहाँ वे पुण्यक्षयपर्यन्त निवास कर फिर बादल आदि बनकर इस पृथ्वीपर औषध, तृण तथा वनस्पतिरूपमें वृष्टिद्वारा पैदा होते हैं। जो मनुष्य 'पंचाग्नि विद्या' आदिसे तथा अग्निहोत्र, वापी, कूप, तड़ागादि प्रतिष्ठा, दान, यज्ञ आदिसे भी वंचित रहते हैं, वे कीट, पतंग आदिकी योनियोंमें जाते हैं और बार-बार जन्म-मरणजन्य क्लेशको भोगते हैं। इस प्रकार मरनेके बाद मनुष्योंकी उत्तम, मध्यम तथा अधम—ये तीन गतियाँ उपनिषदोंमें वर्णित हैं। जो मनुष्य मरणसे पहले ही गुरूपदेशद्वारा तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, उनकी मरनेके समय प्राणोंके साथ आत्मा पूर्वोक्त मार्गोंमेंसे किसी भी मार्गका अनुसरण नहीं करती, अपितु हृदयमें ही (ब्रह्ममें) लीन हो जाती है। यह सर्वोत्तम गति ज्ञानियोंके लिये उपनिषदोंमें बतलायी गयी है। वस्तुतः पूर्णकुम्भ तथा अर्धकुम्भ-पर्व मनानेका रहस्य यह है कि हमलोग इस पर्वपर दूर-दूरसे अनेक स्थानोंसे हरिद्वार, प्रयाग आदि पवित्र तीर्थोंमें आकर गंगास्नानसे पवित्र होकर श्रेष्ठ विद्वानोंके उपदेशद्वारा ज्ञान प्राप्त करें तथा तप, सत्य, दान, यज्ञ आदि शुभ कर्मोंका यथाधिकार, यथारुचि आचरण करें, जिससे मृत्युके बाद हमें सर्वोत्तम, उत्तम या मध्यम गति प्राप्त हो और अधम गति कदापि न मिले।

❑❑

कुम्भ-पर्वके आद्यप्रवर्तक भगवान् शंकराचार्य

जिस कुम्भ-पर्वका उल्लेख वेदों और पुराणोंमें मिलता है, उसकी प्राचीनताके सम्बन्धमें तो किसीको संदेह होनेका अवसर ही नहीं है। किन्तु यह बात अवश्य विचारणीय है कि कुम्भ-मेलेका धार्मिक रूपमें प्रसार करनेका श्रीगणेश किसने किया? इस विषयमें बहुत अन्वेषण करनेपर सिद्ध होता है कि कुम्भ-मेलेको प्रवर्तित करनेवाले भगवान् शंकराचार्य हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने कुम्भ-पर्वके प्रचारकी व्यवस्था केवल धार्मिक संस्कृतिको सुदृढ़ करनेके लिये किया था। उन्हींके आदर्शानुसार आज भी कुम्भ-पर्वके चारों सुप्रसिद्ध तीर्थोंमें सभी सम्प्रदायोंके साधु-महात्मागण देश-काल-परिस्थितिके अनुरूप लोक-कल्याणकी दृष्टिसे धर्मका प्रचार करते हैं, जिससे समस्त मानव-समाजका कल्याण होता है।

भगवान् शंकराचार्यजीके कुम्भ-प्रवर्तक होनेके कारण ही आज भी कुम्भ-पर्वका मेला मुख्यतः साधुओंका ही माना जाता है। वस्तुतः साधु-मण्डली ही कुम्भका जीवन है। भगवान् शंकराचार्यने जिस महान् उद्देश्यकी पूर्तिके लिये कुम्भ-पर्वको प्रवर्तित किया था, आज उसमें जो आवश्यकतासे अधिक कमी आ गयी है, वह किसीसे छिपी नहीं है।

आज प्रत्येक गृहस्थ एवं साधु-महात्माओंको चाहिये कि पुनः भगवान् शंकराचार्यजीके सदुद्देश्यकी पूर्तिमें मनसा, वाचा प्रवृत्त होकर अपना और देशका कल्याण कर कुम्भ-पर्वके महत्त्वको सुरक्षित रखें।

❑❑

पूर्णकुम्भ और अर्धकुम्भ

हिन्दू-समाजमें प्राचीन कालसे ही कुम्भ-पर्व मनानेकी प्रथा चली आ रही है। हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक—इन चारों स्थानोंमें क्रमशः बारह-बारह वर्षपर पूर्णकुम्भका मेला लगता है, जबकि हरिद्वार तथा प्रयागमें अर्धकुम्भ-पर्व भी मनाया जाता है; किन्तु यह अर्धकुम्भ-पर्व उज्जैन और नासिकमें नहीं होता।

अर्धकुम्भ-पर्वके प्रारम्भ होनेके सम्बन्धमें कुछ लोगोंका विचार है कि मुगल-साम्राज्यमें हिन्दू-धर्मपर जब अधिक कुठाराघात होने लगा उस समय चारों दिशाओंके शंकराचार्योंने हिन्दू-धर्मकी रक्षाके लिये हरिद्वार एवं प्रयागमें साधु-महात्माओं एवं बड़े-बड़े विद्वानोंको बुलाकर विचार-विमर्श किया था, तभीसे हरिद्वार और प्रयागमें अर्धकुम्भ-मेला होने लगा। शास्त्रोंमें जहाँ कुम्भ-पर्वकी चर्चा प्राप्त है, वहाँ पूर्णकुम्भका ही उल्लेख मिलता है—

पूर्णः कुम्भोऽधि काल अहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्कालं तमाहुः परमे व्योमन्॥

(अथर्ववेद १९।५३।३)

'हे सन्तगण! पूर्णकुम्भ बारह वर्षके बाद आता है, जिसे हम अनेक बार हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक—इन चार तीर्थस्थानोंमें देखा करते हैं। कुम्भ उस कालविशेषको कहते हैं, जो महान् आकाशमें ग्रह-राशि आदिके योगसे होता है।'

हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक—इन चारों स्थानोंमें प्रत्येक बारहवें वर्षमें कुम्भ पड़ता है। किन्तु इन चारों स्थानोंके कुम्भ-पर्वका क्रम इस प्रकार निर्धारित है, मेष या वृषके बृहस्पतिमें जब सूर्य, चन्द्रमा दोनों मकर राशिपर आते हैं तब प्रयागमें कुम्भ-पर्व होता है। इसके पश्चात् वर्षोंका अन्तराल जो भी हो, जब बृहस्पति सिंहमें होते हैं और सूर्य मेष राशिपर रहता है तो उज्जैनमें कुम्भ लगता है। उसी बार्हस्पत्य वर्षमें जब सूर्य सिंहपर रहता है तो नासिकमें कुम्भ लगता है। तत्पश्चात् लगभग छः बार्हस्पत्य वर्षोंके अन्तरालपर जब बृहस्पति कुम्भ राशिपर रहता है और सूर्य मेषपर तब हरिद्वारमें कुम्भ होता है। इनके मध्यमें छः-छः वर्षके अन्तरसे केवल हरिद्वार और प्रयागमें अर्धकुम्भ होता है।

यथार्थतः पूर्वाचार्योंद्वारा स्थापित अर्धकुम्भ-पर्वका माहात्म्य अपार है; क्योंकि अर्धकुम्भ-पर्वका उद्देश्य पूर्णकुम्भकी तरह विशेष पवित्र और लोकोपकारक है। लोकोपकारक पर्वोंसे धर्मके प्रचारके साथ-साथ देश और समाजका महान् कल्याण सुनिश्चित है।

❑❑

कुम्भ-पर्वके स्नान-दिन

कुम्भका पर्व हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक—इन चार तीर्थस्थानोंमें मनाया जाता है। ये चारों ही एकसे बढ़कर एक परम पवित्र तीर्थ हैं। इन चारों तीर्थोंमें प्रत्येक बारह वर्षके बाद कुम्भ-पर्व होता है—

गंगाद्वारे प्रयागे च धारागोदावरीतटे।
कुम्भाख्येयस्तु योगोऽयं प्रोच्यते शङ्करादिभिः॥

'गंगाद्वार (हरिद्वार), प्रयाग, धारानगरी (उज्जैन) और गोदावरी (नासिक)-में शंकरादि देवगणने 'कुम्भयोग' कहा है।'

कुम्भ भगवान्का मंदिर है। इसकी झाँकी उक्त चारों स्थानोंमें प्रत्येक बारहवें वर्षमें होती है। हरिद्वार आदि चारों स्थानोंके कुम्भ-पर्वका अलग-अलग समय तथा महत्त्व आदि विषयोंका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार प्रस्तुत है—

(१) हरिद्वार

पद्मिनीनायके मेषे कुम्भराशिगते गुरौ।
गंगाद्वारे भवेद्योगः कुम्भनामा तदोत्तमः॥

(स्कन्दपुराण)

'जिस समय बृहस्पति कुम्भ राशिपर स्थित हो और सूर्य मेष राशिपर रहे, उस समय गंगाद्वार (हरिद्वार)-में कुम्भ-योग होता है।'

अथवा

वसन्ते विषुवे चैव घटे देवपुरोहिते।
गंगाद्वारे च कुम्भाख्यः सुधामेति नरो यतः॥

हरिद्वारमें कुम्भके तीन स्नान होते हैं। यहाँ कुम्भका प्रथम स्नान शिवरात्रिसे प्रारम्भ होता है। द्वितीय स्नान चैत्रकी अमावास्याको होता है। तृतीय स्नान (प्रधान स्नान) चैत्रके अन्तमें अथवा वैशाखके प्रथम दिनमें अर्थात् जिस दिन बृहस्पति कुम्भ राशिपर और सूर्य मेष राशिपर हो उस दिन कुम्भस्नान होता है।

(२) प्रयाग

मेषराशिं गते जीवे मकरे चन्द्रभास्करौ।
अमावास्या तदा योगः कुम्भाख्यस्तीर्थनायके॥

(स्कन्दपुराण)

'जिस समय बृहस्पति मेष राशिपर स्थित हो तथा चन्द्रमा और सूर्य मकर राशिपर हो तो उस समय तीर्थराज प्रयागमें कुम्भ-योग होता है।'

अथवा

मकरे च दिवानाथे ह्यजगे च बृहस्पतौ।
कुम्भयोगो भवेत्तत्र प्रयागे ह्यतिदुर्लभः॥

प्रयागमें कुम्भके तीन स्नान होते हैं। यहाँ कुम्भका प्रथम स्नान मकरसंक्रान्ति (मेष राशिपर बृहस्पतिका संयोग होने)-से प्रारम्भ होता है। द्वितीय स्नान (प्रधान स्नान) माघ कृष्णा मौनी अमावास्याको होता है। तृतीय स्नान माघ शुक्ला वसन्तपंचमीको होता है।

(३) उज्जैन (अवन्तिका)

मेषराशिं गते सूर्ये सिंहराशौ बृहस्पतौ।
उज्जयिन्यां भवेत् कुम्भः सदा मुक्तिप्रदायकः॥

'जिस समय सूर्य मेष राशिपर हो और बृहस्पति सिंह राशिपर हो तो उस समय उज्जैनमें कुम्भ-योग होता है।'

(४) सिंहस्थ कुम्भ, नासिक—त्र्यम्बकेश्वर

सिंहराशिं गते सूर्ये सिंहराशौ बृहस्पतौ।
गोदावर्यां भवेत्कुम्भो भक्तिमुक्तिप्रदायकः॥

'जिस समय सूर्य तथा बृहस्पति सिंह राशिपर हों तो उस समय नासिकमें मुक्तिप्रद कुम्भ होता है।'

गोदावरीके रम्य तटपर स्थित नासिकमें कुम्भ-मेला लगता है। इसके लिये सिंह राशिका बृहस्पति एवं सिंह राशिका सूर्य आवश्यक है। इस पर्वका स्नान भाद्रपदमें अमावास्या-तिथिको होता है। देवगुरु बृहस्पति जबतक विश्वात्मा सूर्यनारायणके साथ सिंह राशिमें रहते हैं तबतकका समय सिंहस्थ कहलाता है। इस सिंहस्थ कालमें श्रीनासिक तीर्थकी यात्रा, पवित्र गोदावरी नदीमें स्नान एवं त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंगके दर्शन-लाभका बड़ा माहात्म्य है। यहीं पंचवटीमें भगवान् श्रीरामने वनवासका दीर्घकाल व्यतीत किया था।

❑❑

कुम्भ-पर्वका माहात्म्य

हिन्दू-धर्मशास्त्र कुम्भ-पर्वकी महिमासे भरे पड़े हैं। स्कन्दपुराणका वचन है—

तान्येव यः पुमान् योगे सोऽमृतत्वाय कल्पते।
देवा नमन्ति तत्रस्थान् यथा रङ्का धनाधिपान्॥

(स्कन्दपुराण)

'जो मनुष्य कुम्भ-योगमें स्नान करता है, वह अमृतत्व (मुक्ति)-की प्राप्ति करता है। जिस प्रकार दरिद्र मनुष्य सम्पत्तिशालीको नम्रतासे अभिवादन करता है, उसी प्रकार कुम्भ-पर्वमें स्नान करनेवाले मनुष्यको देवगण नमस्कार करते हैं।'

संक्षेपमें हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन तथा नासिकमें कुम्भ-स्नानका महत्त्व इस प्रकार है—

१. हरिद्वार-स्नानकी महिमा—

कुम्भराशिं गते जीवे तथा मेषे गते रवौ।
हरिद्वारे कृतं स्नानं पुनरावृत्तिवर्जनम्॥

'कुम्भ राशिमें बृहस्पति हो तथा मेष राशिपर सूर्य हो तो हरिद्वारके कुम्भमें स्नान करनेसे मनुष्य पुनर्जन्मसे रहित हो जाता है।'

२. प्रयाग-स्नानकी महिमा—

सहस्त्रं कार्तिके स्नानं माघे स्नानशतानि च।
वैशाखे नर्मदा कोटिः कुम्भस्नानेन तत्फलम्॥

(स्कन्दपुराण)

'कार्तिक महीनेमें एक हजार बार गंगामें स्नान करनेसे, माघमें सौ बार गंगामें स्नान करनेसे और वैशाखमें करोड़ बार नर्मदामें स्नान करनेसे जो फल होता है, वह प्रयागमें कुम्भ-पर्वपर केवल एक ही बार स्नान करनेसे प्राप्त होता है।'

विष्णुपुराणमें भी कहा गया है—

अश्वमेधसहस्त्राणि वाजपेयशतानि च।
लक्षं प्रदक्षिणा भूमेः कुम्भस्नानेन तत्फलम्॥

'हजार अश्वमेध-यज्ञ करनेसे, सौ वाजपेय-यज्ञ करनेसे और लाख बार पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल केवल प्रयागके कुम्भके स्नानसे प्राप्त होता है।'

३. उज्जैन-स्नानकी महिमा—

कुशस्थलीमहाक्षेत्रं योगिनां स्थानदुर्लभम्।
माधवे धवले पक्षे सिंहे जीवे अजे रवौ॥
तुलाराशौ निशानाथे पूर्णायां पूर्णिमातिथौ।
व्यतीपाते तु सञ्जाते चन्द्रवासरसंयुते।
उज्जयिन्यां महायोगे स्नाने मोक्षमवाप्नुयात्॥

(स्क० पु०, अवन्तीखण्ड)

अन्यत्र भी आया है—

'धारायां च तदा कुम्भो जायते खलु मुक्तिदः।'

४. नासिक-स्नानकी महिमा—

षष्टिवर्षसहस्त्राणि भागीरथ्यवगाहनम्।
सकृद् गोदावरीस्नानं सिंहस्थे च बृहस्पतौ॥

'जिस समय बृहस्पति सिंह राशिपर हो उस समय गोदावरीमें केवल एक बार स्नान करनेसे मनुष्य साठ हजार वर्षोंतक गंगा-स्नान करनेके सदृश पुण्य प्राप्त करता है।'

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा गया है—

अश्वमेधफलं चैव लक्षगोदानजं फलम्।
प्राप्नोति स्नानमात्रेण गोदायां सिंहगे गुरौ॥

'जिस समय बृहस्पति सिंह राशिपर स्थित हो, उस समय गोदावरीमें केवल स्नानमात्रसे ही मनुष्य अश्वमेध-यज्ञ करनेका तथा एक लक्ष गो-दान करनेका पुण्य प्राप्त करता है।'

ब्रह्माण्डपुराणमें कहा गया है—

यस्मिन् दिने गुरुर्याति सिंहराशौ महामते।
तस्मिन् दिने महापुण्यं नरः स्नानं समाचरेत्॥

यस्मिन् दिने सुरगुरुः सिंहराशिगतो भवेत्।
तस्मिंस्तु गौतमीस्नानं कोटिजन्माघनाशनम्॥
तीर्थानि नद्यश्च तथा समुद्राः
क्षेत्राण्यरण्यानि तथाऽऽश्रमाश्च।
वसन्ति सर्वाणि च वर्षमेकं
गोदातटे सिंहगते सुरेज्ये॥

❑❑

कुम्भ-स्नानकी विधि एवं दानका महत्त्व

प्रातःकाल उठकर सर्वप्रथम देवस्मरण करना चाहिये। उसके पश्चात् शौचादि क्रियाओंसे निवृत्त होकर कुम्भ-पर्व-महत्त्वसूचक श्लोकोंका स्मरण करे। तदनन्तर यथासमय कुम्भ-स्नानार्थ गंगा आदि पवित्र नदीमें जाकर अपने दोनों हाथोंद्वारा* कुम्भ-मुद्रा (कलश-मुद्रा) दिखलाकर और उसमें अमृतकी भावना कर निम्नलिखित श्लोकोंको पढ़ता हुआ स्नान करे—

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम्॥
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः॥
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः॥
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः।
त्वत्प्रसादादिमं स्नानं कर्तुमीहे जलोद्भव॥
सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा।

स्नान करनेके बाद सन्ध्या-तर्पणादिसे निवृत्त होकर गणपति-पूजनपूर्वक कुम्भ (कलश)-स्थापन करे। तदनन्तर श्रद्धा-भक्तिसे कुम्भका षोडशोपचारपूर्वक

१-दक्षाङ्गुष्ठं परेऽङ्गुष्ठे क्षिप्त्वा हस्तद्वयेन च।
सावकाशां मुष्टिकां च कुर्यात् सा कुम्भमुद्रिका॥

पूजन करे। तत्पश्चात् एक, चार, ग्यारह, इक्कीस अथवा यथाशक्ति सुवर्ण, रजत, ताम्र या पीतलके कलशोंमें घृत भरकर सुपात्र—योग्य विद्वानोंको 'घृत-कुम्भ' दान करे।

कुम्भ-पर्वके समय यथाविधि घृतपूर्ण कुम्भ (कलश)-का पूजन कर उसे वस्त्रालंकार, आभूषण तथा सुवर्ण-खण्डसहित सदाचारी विद्वान्को देनेसे सैकड़ों गोदान करनेका फल मिलता है तथा मनुष्यके पितरोंकी आत्मा सन्तुष्ट होती है।

इसी प्रकार प्रत्येक कुम्भ-पर्वके तीर्थस्थानोंमें अनेकविध अन्न, द्रव्यादिके दान करनेसे करोड़ों तीर्थोंमें जानेका तथा सैकड़ों 'अश्वमेध-यज्ञ' करनेका फल प्राप्त होता है।

❑❑

हरिद्वार-माहात्म्य

सात पुरियोंमेंसे मायापुरी हरिद्वारके विस्तारके भीतर आ जाती है। यहाँ प्रति बारहवें वर्ष कुम्भका मेला लगता है। उसके छठे वर्ष अर्धकुम्भ पड़ता है। इस तीर्थके कई नाम हैं—हरद्वार, हरिद्वार, गंगाद्वार, कुशावर्त। मायापुरी, हरिद्वार, कनखल, ज्वालापुर और भीमगोड़ा—इन पाँचों पुरियोंको मिलाकर हरिद्वार कहा जाता है।

राजा भगीरथके पीछे चलनेवाली अलकनन्दा गंगा सहस्रों पर्वतोंको विदीर्ण करती हुई जहाँ भूमिपर उतरी हैं, जहाँ पूर्वकालमें दक्षप्रजापतिने यज्ञेश्वर भगवान् विष्णुका यजन किया है, वह पुण्यदायक क्षेत्र (हरिद्वार) ही गंगाद्वार है, जो मनुष्योंके समस्त पातकोंका नाश करनेवाला है। प्रजापति दक्षके यज्ञमें इन्द्रादि सब देवता बुलाये गये थे और वे सब अपने-अपने गणोंके साथ यज्ञमें भाग लेनेकी इच्छासे वहाँ आये थे। उसमें देवर्षि, शिष्य-प्रशिष्योंसहित शुद्ध अन्तःकरणवाले ब्रह्मर्षि तथा राजर्षि भी पधारे थे। पिनाकपाणि भगवान् शंकरको छोड़कर अन्य सभी देवताओंको निमन्त्रित किया गया था। वे सभी देवता विमानोंपर बैठकर अपनी प्रिय पत्नियोंके साथ दक्षप्रजापतिके यज्ञोत्सवमें जा रहे थे और प्रसन्नतापूर्वक

आपसमें उस उत्सवका वर्णन भी करते थे। कैलासपर रहनेवाली देवी सतीने उनकी बातें सुनीं। देवताओंकी बातें सुनकर वे पिताका यज्ञोत्सव देखनेके लिये उत्सुक हुईं। उस समय सतीने महादेवजीसे उस उत्सवमें चलनेकी प्रार्थना कीं। उनकी बात सुनकर भगवान् शिवने कहा—'देवि! वहाँ जाना कल्याणकर नहीं होगा।' किन्तु सतीजी अपने पिताका यज्ञोत्सव देखनेके लिये चल दीं। सतीदेवी वहाँ पहुँच तो गयीं, किन्तु किसीने उनका स्वागत-सत्कार नहीं किया। तब सतीने वहाँ अपने प्राण त्याग दिये। अतः वह स्थान एक उत्तम क्षेत्र बन गया। जो उस तीर्थमें स्नान करके देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करते हैं, वे देवीके अत्यन्त प्रिय होते हैं। वे भोग और मोक्षके प्रधान अधिकारी हो जाते हैं।

तदनन्तर देवर्षि नारदसे अपनी प्रिया सतीजीके प्राण-त्यागका समाचार सुनकर भगवान् शंकरने वीरभद्रको उत्पन्न किया। वीरभद्रने सम्पूर्ण प्रमथगणोंके साथ जाकर उस यज्ञका नाश कर दिया। फिर ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे तुरन्त प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उस विकृत यज्ञको पुनः सम्पन्न किया। तबसे वह अनुपम तीर्थ सम्पूर्ण पातकोंका नाश करनेवाला हुआ। उस तीर्थमें विधिपूर्वक स्नान करके मनुष्य जिस-जिस कामनाका चिन्तन करता है, उसे अवश्य प्राप्त कर लेता है। जहाँ दक्ष तथा देवताओंने यज्ञोंके स्वामी साक्षात् अविनाशी भगवान् विष्णुका स्तवन किया था, वह स्थान हरितीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। जो मनुष्य उस हरिपदतीर्थ (हरिकी पैड़ी)-में विधिपूर्वक स्नान करता है, वह भगवान् विष्णुका प्रिय और भोग तथा मोक्षका प्रधान अधिकारी होता है। उससे पूर्व दिशामें त्रिगंग नामसे विख्यात क्षेत्र है, जहाँ सब लोग त्रिपथगा गंगाका साक्षात् दर्शन करते हैं। वहाँ स्नान करके देवताओं, ऋषियों, पितरों और मनुष्योंका श्रद्धापूर्वक तर्पण करनेवाले पुरुष स्वर्गलोकमें देवताकी भाँति आनन्दित होते हैं। वहाँसे दक्षिण दिशामें कनखलतीर्थ है जहाँपर दिन-रात उपवास और स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो वहाँ वेदोंमें पारंगत विद्वान् ब्राह्मणको गोदान देता है, वह कभी वैतरणी नदी और यमराजको नहीं देखता है। वहाँ किये गये जप, होम, तप और दान अक्षय होते हैं।

वहाँसे पश्चिम दिशामें कोटितीर्थ है, जहाँ भगवान् कोटीश्वरका दर्शन करनेसे कोटि गुना पुण्य प्राप्त होता है और एक रात वहाँ निवास करनेसे

पुण्डरीक-यज्ञका फल मिलता है। इसी प्रकार वहाँसे उत्तर दिशामें सप्तगंग (सप्त सरोवर) नामसे विख्यात उत्तम तीर्थ है। वह सम्पूर्ण पातकोंका नाश करनेवाला है। वहाँ सप्तर्षियोंके पवित्र आश्रम हैं, उन सबमें पृथक्-पृथक् स्नान और देवताओं एवं पितरोंका तर्पण करके मनुष्य ऋषिलोकको प्राप्त होता है। राजा भगीरथ जब देवनदी गंगाको ले आये, उस समय उन सप्तर्षियोंकी प्रसन्नताके लिये वे सात धाराओंमें विभक्त हो गयीं। तबसे पृथ्वीपर वह सप्तगंग नामक तीर्थ विख्यात हो गया। वहाँसे परम उत्तम कपिलाह्रद नामक तीर्थमें जाकर जो श्रेष्ठ ब्राह्मणको धेनु दान करता है, उसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। तदनन्तर शन्तनुके ललित नामक उत्तम तीर्थमें जाकर विधिवत् स्नान और देवता आदिका तर्पण करके मनुष्य उत्तम गति पाता है, जहाँ राजा शन्तनुने मनुष्यरूपमें आयी हुई गंगाको प्राप्त किया और जहाँ गंगाने प्रतिवर्ष एक-एक वसुको जन्म देकर अपनी धारामें उनके शरीरको डलवा दिया था, उन वसुओंका शरीर जहाँ गिरा वहाँ वृक्ष पैदा हो गया। जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, वह गंगादेवीके प्रसादसे कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। वहाँसे भीमस्थल (भीमगोड़ा)-में जाकर जो पुण्यात्मा पुरुष स्नान करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोग भोगकर शरीरका अन्त होनेपर स्वर्गलोकमें जाता है।

किं बहुना इस तीर्थका माहात्म्य वर्णनातीत है। पद्मपुराण और नारदादि पुराण हरिद्वारकी महिमासे भरे पड़े हैं। पुराणका वचन है—

स्कन्द उवाच—

श्रृणु नारद वक्ष्यामि लोकानां मुक्तिकारणम्।
सकृत्स्नानं तु यैर्मर्त्यैर्गङ्गाद्वारे शुभावहे॥
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥

स्कन्द नारदसे कहते हैं—'हे नारद! मैं तुम्हें मनुष्योंकी मुक्तिका एक उपाय बताता हूँ, जो लोग एक बार भी श्रीहरिद्वारमें गंगास्नान करते हैं वे फिर संसारमें जन्म नहीं लेते, चाहे करोड़ों कल्प बीत जायँ।'

तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां मुनिसत्तम।
भजन्ते सन्निधिं तत्र स्नातः सर्वत्र जायते॥

'हे मुने! साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हरिद्वार तीर्थमें निवास करते हैं। जिसने हरिद्वार तीर्थमें स्नान किया, उसने समस्त तीर्थोंमें स्नान किया।'

कुशावर्तं महातीर्थं दक्षिणे ब्रह्मतीर्थतः।
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्॥
यदत्र क्रियते कर्म तत्तत्स्यात्कोटिसंख्यकम्॥

'ब्रह्मकुण्डसे दक्षिणकी ओर (एक फर्लांगकी दूरीपर) कुशावर्त नामक महातीर्थ है। यहाँ स्नान, दान, जप, होम, वेदादि पाठ, श्राद्ध तथा तर्पण आदि जो कुछ किया जाता है, वह करोड़ों गुना अधिक होता है।'

गंगाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते।
स्नात्वा च कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते॥

'हरिद्वार, कुशावर्त, बिल्वकेश, नीलपर्वत तथा कनखलतीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता।'

धन्यानां पुरुषाणां हि गंगाद्वारस्य दर्शनम्।
विशेषतस्तु मेषार्के सङ्क्रमेऽतीव पुण्यदे॥

'पुण्यात्मा पुरुषोंको श्रीहरिद्वारके दर्शन होते हैं, विशेषकर इस तीर्थमें स्नान-दानादिका माहात्म्य मेष-संक्रान्तिमें होता है।'

योऽस्मिन्क्षेत्रे नरः स्नायात्कुम्भेज्येऽजगे रवौ॥
स तु स्याद्वाक्पतिः साक्षात्प्रभाकर इवापरः।

'जो इस क्षेत्रमें बृहस्पतिके कुम्भ राशिपर और सूर्यके मेष राशिपर रहते समय स्नान करता है, वह साक्षात् बृहस्पति और दूसरे सूर्यके समान तेजस्वी होता है।'

सोमवारान्वितायां वा यस्यां कस्यामथापि वा।
अमायां च तथा माघे वैशाखे कार्त्तिकेऽपि वा॥

'सोमवती अमावास्यामें अथवा अन्य किसी अमावास्यामें एवं माघ, वैशाख तथा कार्तिकमासमें इस हरिद्वारतीर्थका दर्शन तथा स्नान आदिका बड़ा माहात्म्य है।'

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां स्नानमात्रतः।
प्राप्यते परमं स्थानं दुर्लभं योगिनामपि॥

'ज्येष्ठके महीनेमें शुक्ल पक्षकी दशमी (दशहरा, गंगाजन्म)-के दिन केवल स्नान करनेसे परमधामकी प्राप्ति होती है, जो कि योगियोंको भी दुर्लभ है।'

स्वर्गद्वारेण तत् तुल्यं गंगाद्वारं न संशयः।
तत्राभिषेकं कुर्वीत कोटितीर्थे समाहितः॥

लभते पुण्डरीकं च कुलं चैव समुद्धरेत्।
तत्रैकरात्रिवासेन गोसहस्रफलं लभेत्॥
सप्तगङ्गे त्रिगङ्गे च शक्रावर्ते च तर्पयन्।
देवान् पितृंश्च विधिवत् पुण्ये लोके महीयते॥
ततः कनखले स्नात्वा त्रिरात्रोपोषितो नरः।
अश्वमेधमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति॥

'हरिद्वार स्वर्गके द्वारके समान है। इसमें संशय नहीं है। वहाँ जो एकाग्र होकर कोटितीर्थमें स्नान करता है, उसे पुण्डरीक-यज्ञका फल मिलता है तथा वह अपने कुलका उद्धार कर देता है। वहाँ एक रात निवास करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। सप्तगंगा, त्रिगंगा और शक्रावर्तमें विधिपूर्वक देवर्षि-पितृतर्पण करनेवाला पुण्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर कनखलमें स्नान करके तीन रात उपवास करे। ऐसा करनेवाला अश्वमेध-यज्ञका फल पाता है और स्वर्गगामी होता है।'

इतना ही नहीं, जो मानव दूर रहकर भी गंगाद्वारका स्मरण करता है, वह उसी प्रकार सद्गति पाता है, जैसे अन्तकालमें श्रीहरिको स्मरण करनेवाला पुरुष। मनुष्य शुद्धचित्त होकर हरिद्वारमें जिस देवताका पूजन करता है, वह देवता परम प्रसन्न होकर उसके मनोरथोंको पूर्ण करता है। जहाँ गंगा भूतलपर आयी हैं, वही तपस्याका स्थान है। वही जपका स्थल है और वही होमका स्थान है। जो मनुष्य नियमपूर्वक रहकर तीनों समय स्नान करके वहाँ गंगासहस्रनामका पाठ करता है, वह अक्षय संतति पाता है। जो नियमपूर्वक भक्तिभावसे गंगाद्वारमें पुराण सुनता है, वह अविनाशी पदको प्राप्त होता है। जो श्रेष्ठ मानव हरिद्वारका माहात्म्य सुनता है अथवा भक्तिभावसे उसका पाठ करता है, वह भी स्नानका फल पाता है।

पतितपावन तीर्थ हरिद्वारकी महिमा अपार है। इसके विषयमें पद्मपुराणका एक पुण्यमय उपाख्यान है—

एक समयकी बात है, कुरुक्षेत्रमें नगरसे बाहर कालिंग नामक एक पापी चाण्डाल रहता था। एक बार सूर्यग्रहणके समय आये हुए एक धनी वैश्यके पीछे वह लग गया और कुरुक्षेत्रसे उस वैश्यके लौटनेके समय इसी हरिद्वारमें आधी रातके वक्त उस पापीने वैश्यके खेमेमें चोरी करनेकी चेष्टा

की और दो पहरेदारोंको मार डाला। इसी समय वैश्यके एक सेवकने दूरसे बाण मारा, जिससे भागता हुआ वह पापी भी मर गया। तदनन्तर चाण्डालद्वारा मारे हुए वैश्यके दोनों पहरेदार और वह चाण्डाल—तीनों देवताओंके द्वारा लाये हुए विमानपर चढ़कर वैश्यसे बोले—'देखो—इस तीर्थका माहात्म्य! यह हरिद्वार पापियोंका भी कल्याण करनेवाला है।' ऐसा कहकर वे स्वर्गको चले गये। दूसरे दिन वैश्यने अपने दोनों पहरेदारोंके शरीरोंका दाह-संस्कार कराकर उनकी हड्डियाँ हरिद्वारतीर्थमें डलवा दीं। इसके परिणामस्वरूप वे दोनों भाग्यवान् स्वर्गसे लौटकर भगवान् विष्णुके परमधाममें चले गये। तदनन्तर बुद्धिमान् वैश्यने अपने घर जाकर सांसारिक कार्योंको धर्मपूर्वक करते हुए भगवान्‌की भक्तिमें मन लगाया और अन्तमें इसी वैकुण्ठधामकी प्राप्ति करानेवाले तीर्थमें आकर मृत्युको प्राप्त हुआ।

❑❑

प्रयाग-माहात्म्य

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ॥

प्रयाग तीर्थराज कहे जाते हैं। समस्त तीर्थोंके ये अधिपति हैं। सातों पुरियाँ इनकी रानियाँ कही गयी हैं। गंगा-यमुनाकी धाराने पूरे प्रयागके क्षेत्रको तीन भागोंमें बाँट दिया है। ये तीनों भाग अग्निस्वरूप—यज्ञवेदी माने जाते हैं। इनमें गंगा-यमुनाके मध्यका भाग गार्हपत्याग्नि, गंगापारका भाग (अलर्कपुर—अरैल) दक्षिणाग्नि माना जाता है। इन भागोंमें पवित्र होकर एक-एक रात्रि निवास करनेसे इन अग्नियोंकी उपासनाका फल प्राप्त होता है।

प्रयागमें प्रतिवर्ष माघमासमें मेला लगता है। इसे कल्पवास कहते हैं। बहुत-से श्रद्धालु यात्री प्रतिवर्ष गंगा-यमुनाके मध्यमें कल्पवास करते हैं। कल्पवास कोई सौर मासकी मकर-संक्रान्तिसे कुम्भकी संक्रान्तितक मानते हैं और कोई चान्द्रमासके अनुसार माघ महीनेभरको मानते हैं। यहाँ प्रति बारहवें वर्ष कुम्भ होता है। कुम्भसे छठे वर्ष अर्धकुम्भ पड़ता है। इस अवसरपर भी माघभर प्रयागमें भारी मेला रहता है। इतिहासकारोंका कथन है कि पर्वके दिनोंमें सम्राट् हर्षवर्धन प्रयागमें आकर अपना सर्वस्व दान कर दिया करता था।

प्रयागमें गंगा-यमुनाके संगममें स्नान करके प्राणी पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गका अधिकारी हो जाता है और इस क्षेत्रमें देह त्यागनेवाले प्राणीकी मुक्ति हो जाती है—ऐसे वचन पुराणोंमें प्राप्त होते हैं।

प्रयागके माहात्म्यसे सारा वैदिक साहित्य भरा पड़ा है। पद्मपुराणका वचन है—

ग्रहाणां च यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं प्रयागाख्यमनुत्तमम्॥

'जैसे ग्रहोंमें सूर्य तथा ताराओंमें चन्द्रमा हैं, वैसे ही तीर्थोंमें प्रयाग सर्वोत्तम है।'

यत्र वटस्याक्षयस्य दर्शनं कुरुते नरः।
तेन दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या विनश्यति॥

'जो पुरुष यहाँके अक्षयवटका दर्शन करता है, उसके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्या नष्ट हो जाती है।'

आदिवटः समाख्यातः कल्पान्तेऽपि च दृश्यते।
शेते विष्णुर्यस्य पत्रे अतोऽयमव्ययः स्मृतः॥

'यह अक्षयवट आदिवट कहलाता है और कल्पान्तमें भी देखा जाता है। इसके पत्तेपर भगवान् विष्णु शयन करते हैं, अतः यह वट अव्यय समझा जाता है।'

माधवाख्यस्तत्र देवः सुखं तिष्ठति नित्यशः।
तस्य वै दर्शनं कार्यं महापापैः प्रमुच्यते॥

'वहाँ भगवान् माधव नामसे सुखपूर्वक नित्य विराजते हैं, उनका दर्शन करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य महापापोंसे मुक्त हो जाता है।'

गोघ्नो वापि च चाण्डालो दुष्टो वा दुष्टचेतनः।
बालघाती तथाविद्वान् म्रियते तत्र वै यदा॥
स वै चतुर्भुजो भूत्वा वैकुण्ठे वसते चिरम्।

'गोघाती, चाण्डाल, शठ, दुष्टचित्त, बालघाती तथा मूर्ख—जो भी यहाँ मरता है, वह चतुर्भुज होकर अनन्तकालतक वैकुण्ठमें वास करता है।'

प्रयागे तु नरो यस्तु माघस्नानं करोति च।
न तस्य फलसंख्यास्ति शृणु देवर्षिसत्तम॥

'देवर्षे! प्रयागमें जो माघस्नान करता है, उसके पुण्यफलकी कोई गणना नहीं।'

मत्स्यपुराणमें आया है कि तीर्थराज प्रयागकी महिमाके विषयमें महाराज युधिष्ठिरके द्वारा पूछनेपर मार्कण्डेय ऋषिने कहा कि हे राजन्! प्रयाग-माहात्म्यका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता है, फिर भी मैं संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ—

षष्टिर्धनुःसहस्राणि यानि रक्षन्ति जाह्नवीम्।
यमुनां रक्षति सदा सविता सप्तवाहनः॥
प्रयागं तु विशेषेण सदा रक्षति वासवः।
मण्डलं रक्षति हरिर्दैवतैः सह संगतः॥
तं वटं रक्षति सदा शूलपाणिर्महेश्वरः।
स्थानं रक्षन्ति वै देवाः सर्वपापहरं शुभम्॥
अधर्मेणावृतो लोको नैव गच्छति तत्पदम्।
अल्पमल्पतरं पापं यदा तस्य नराधिप।
प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम्॥
दर्शनात् तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि।
मृत्तिकालम्भनाद् वापि नरः पापात् प्रमुच्यते॥

'प्रयागमें साठ हजार धनुर्धर वीर गंगाकी रक्षा करते हैं तथा सात घोड़ोंसे जुते हुए रथपर चलनेवाले सूर्य सदा यमुनाकी देखभाल करते रहते हैं। इन्द्र विशेषरूपसे सदा प्रयागकी रक्षामें तत्पर रहते हैं। श्रीहरि देवताओंको साथ लेकर पूरे प्रयाग-मण्डलकी रखवाली करते हैं। महेश्वर हाथमें त्रिशूल लेकर सदा वट-वृक्षकी रक्षा करते रहते हैं। देवगण इस सर्वपापहारी मंगलमय स्थानकी रक्षामें तत्पर रहते हैं। इसलिये इस लोकमें अधर्मसे घिरा हुआ मनुष्य प्रयागक्षेत्रमें प्रवेश नहीं कर सकता। नरेश्वर! यदि किसीका स्वल्प अथवा उससे भी थोड़ा पाप होगा तो वह सारा-का-सारा प्रयागका स्मरण करनेसे नष्ट हो जायगा; क्योंकि (ऐसा विधान है कि) प्रयागतीर्थके दर्शन, नाम-संकीर्तन अथवा मृत्तिकाका स्पर्श करनेसे मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है।'

पञ्च कुण्डानि राजेन्द्र येषां मध्ये तु जाह्नवी।
प्रयागस्य प्रवेशे तु पापं नश्यति तत्क्षणात्॥

योजनानां सहस्रेषु गंगायाः स्मरणान्नरः।
अपि दुष्कृतकर्मा तु लभते परमां गतिम्॥
कीर्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति।
अवगाह्य च पीत्वा तु पुनात्यासप्तमं कुलम्॥
तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
समागता महाभागा यमुना तत्र निम्नगा।
तत्र संनिहितो नित्यं साक्षाद् देवो महेश्वरः॥
दुष्प्राप्यं मानुषैः पुण्यं प्रयागं तु युधिष्ठिर।
देवदानवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः।
तदुपस्पृश्य राजेन्द्र स्वर्गलोकमुपासते॥

'राजेन्द्र! प्रयागक्षेत्रमें पाँच कुण्ड हैं, उन्हींके मध्यमें गंगा बहती हैं, इसलिये प्रयागमें प्रवेश करते ही उसी क्षण पाप नष्ट हो जाता है। मनुष्य कितना भी बड़ा पापी क्यों न हो, यदि वह हजारों योजन दूरसे भी गंगाका स्मरण करता है तो उसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। गंगाका नाम लेनेसे मनुष्य पापसे छूट जाता है, दर्शन करनेसे उसे जीवनमें मांगलिक अवसर देखनेको मिलते हैं तथा स्नान और जलपान करके तो वह अपनी सात पीढ़ियोंको पावन बना देता है। वहाँ सूर्य-कन्या महाभागा यमुनादेवी, जो तीनों लोकोंमें विख्यात हैं, नदीरूपमें आयी हुई हैं और साक्षात् भगवान् शंकर वहाँ नित्य निवास करते हैं। इसलिये युधिष्ठिर! यह पुण्यप्रद प्रयाग मनुष्योंके लिये दुर्लभ है। राजेन्द्र! देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध, चारण आदि गंगा-जलका स्पर्श कर स्वर्गलोकमें विराजमान होते हैं।'

आर्तानां हि दरिद्राणां निश्चितव्यवसायिनाम्।
स्थानमुक्तं प्रयागं तु नाख्येयं तु कदाचन॥
व्याधितो यदि वा दीनो वृद्धो वापि भवेन्नरः।
गंगायमुनयोर्मध्ये यस्तु प्राणान् परित्यजेत्॥
दीप्तकाञ्चनवर्णाभैर्विमानैः सूर्यवर्चसैः।
गन्धर्वाप्सरसां मध्ये स्वर्गे मोदति मानवः।
ईप्सिताँल्लभते कामान् वदन्ति ऋषिपुंगवाः॥
सर्वरत्नमयैर्दिव्यैर्नानाध्वजसमाकुलैः।
वराङ्गनासमाकीर्णैर्मोदते शुभलक्षणैः॥

गीतवाद्यविनिर्घोषैः प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते।
यावन्न स्मरेज्जन्म तावत् स्वर्गे महीयते॥
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः।
हिरण्यरत्नसम्पूर्णे समृद्धे जायते कुले।
तदेव स्मरते तीर्थं स्मरणात् तत्र गच्छति॥
देशस्थो यदि वारण्ये विदेशस्थोऽथवा गृहे।
प्रयागं स्मरमाणोऽपि यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति वदन्ति ऋषिपुंगवाः॥

'दुःखियों, दरिद्रों और निश्चित व्यवसाय करनेवालोंके कल्याणके लिये प्रयागक्षेत्र ही प्रशस्त कहा गया है। इसे कभी (कहीं) प्रकट नहीं करना चाहिये। श्रेष्ठ ऋषियोंका कथन है कि जो मनुष्य रोगग्रस्त, दीन अथवा वृद्ध होकर गंगा और यमुनाके संगममें प्राणोंका त्याग करता है, वह तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाले एवं सूर्य-सदृश तेजस्वी विमानोंद्वारा स्वर्गमें जाकर गन्धर्वों और अप्सराओंके मध्यमें आनन्दका उपभोग करता है और अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। वहाँ वह सम्पूर्ण रत्नोंसे सुशोभित, अनेक रंगोंकी ध्वजाओंसे मण्डित, अप्सराओंसे खचाखच भरे हुए शुभ लक्षणसम्पन्न दिव्य विमानोंमें बैठकर आनन्द मनाता है तथा मांगलिक गीतों और बाजोंके शब्दोंद्वारा नींदसे जगाया जाता है। इस प्रकार जबतक वह अपने जन्मका स्मरण नहीं करता, तबतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् पुण्य क्षीण होनेपर उसका स्वर्गसे पतन हो जाता है। इस प्रकार स्वर्गसे भ्रष्ट हुआ वह जीव सुवर्ण-रत्नसे परिपूर्ण एवं समृद्ध कुलमें जन्म धारण करता है और समयानुसार पुनः उसी तीर्थका स्मरण करता है तथा स्मरण आनेसे पुनः उस प्रयागक्षेत्रकी यात्रा करता है। ऋषिवरोंका कथन है कि मनुष्य चाहे देशमें हो अथवा विदेशमें, घरमें हो अथवा वनमें, यदि वह प्रयागका स्मरण करते हुए प्राणोंका परित्याग करता है तो ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।'

नारदपुराणमें प्रयाग-माहात्म्यकी चर्चा करते हुए कहा गया है कि गंगामें जहाँ कहीं भी स्नान किया जाय, वह कुरुक्षेत्रके समान पुण्यदायिनी है। उससे दस गुना पुण्य देनेवाली गंगा वह बतायी गयी है, जहाँ वह विन्ध्यपर्वतसे संयुक्त होती है। काशीकी उत्तरवाहिनी गंगा विन्ध्यपर्वतके

निकटवर्तिनी गंगासे सौ गुनी पुण्यदायिनी कही गयी है। काशीसे भी सौ गुना पुण्य वहाँ बताया गया है, जहाँ गंगा यमुनासे मिलती है। वह भी जहाँतक पश्चिमवाहिनी हैं, वहाँ उसमें सहस्र गुना पुण्य प्राप्त होता है। पश्चिमवाहिनी गंगा दर्शनमात्रसे ही ब्रह्महत्या आदि पापोंका निवारण करनेवाली है। पश्चिमाभिमुखी गंगा यमुनाके साथ मिली हैं। वे सौ कल्पोंका पाप हर लेती हैं। माघमासमें तो वे और भी दुर्लभ हैं। पृथ्वीपर वे अमृतरूप कही जाती हैं। गंगा और यमुनाके संगमका जल वेणीके नामसे प्रसिद्ध है, जिसमें माघमासमें दो घड़ीका स्नान देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। पृथ्वीपर जितने तीर्थ तथा जितनी पुरियाँ हैं, वे मकर राशिपर सूर्यके रहते हुए माघमासमें वेणीमें स्नान करनेके लिये आती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, रुद्र, आदित्य, मरुद्‍गण, गन्धर्व, लोकपाल, यक्ष, किन्नर, गुह्यक, अणिमादि गुणोंसे युक्त अन्यान्य तत्त्वदर्शी पुरुष, ब्रह्माणी, पार्वती, लक्ष्मी, शची, मेधा, अदिति, रति, समस्त देवपत्नियाँ, नागपत्नियाँ तथा समस्त पितृगण—ये सब-के-सब माघमासमें त्रिवेणी-स्नानके लिये आते हैं। सत्ययुगमें तो उक्त सभी तीर्थ प्रत्यक्षरूप धारण करके आते थे, किन्तु कलियुगमें वे छिपे रूपसे आते हैं। पापियोंके संगदोषसे काले पड़े हुए सम्पूर्ण तीर्थ प्रयागमें माघमासमें स्नान करनेसे श्वेतवर्णके हो जाते हैं।

मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव॥
स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव।

(ना०, उत्तर० ६३। १३-१४)

'गोविन्द! अच्युत! माधव! देव! मकर राशिपर सूर्यके रहते हुए माघमासमें त्रिवेणीके जलमें किये हुए मेरे इस स्नानसे सन्तुष्ट हो आप शास्त्रोक्त फल देनेवाले हैं।'

—इस मन्त्रका उच्चारण करके मौनभावसे स्नान करे। 'वासुदेव, हरि, कृष्ण और माधव' आदि नामोंका बार-बार स्मरण करे। मनुष्य अपने घरपर गरम जलसे साठ वर्षोंतक जो स्नान करता है, उसके समान फलकी प्राप्ति सूर्यके मकर राशिपर रहते समय एक बारके स्नानसे हो जाती है। बाहर बावड़ी आदिमें किया हुआ स्नान बारह वर्षोंके स्नानका फल देनेवाला है। पोखरेमें स्नान करनेपर उससे दूना और नदी आदिमें स्नान

करनेपर चौगुना फल प्राप्त होता है। देवकुण्डमें वही फल दस गुना और महानदीमें सौ गुना होता है। दो महानदियोंके संगममें स्नान करनेपर चार सौ गुने फलकी प्राप्ति होती है; किन्तु सूर्यके मकर राशिपर रहते समय प्रयागकी गंगामें स्नान करनेमात्रसे वह सारा फल सहस्र गुना होकर मिलता है।

प्रयागतीर्थको पूर्वकालमें ब्रह्माजीने प्रकट किया था। जिसके गर्भमें सरस्वती छिपी हैं, वह श्वेत और श्याम जलकी धारा ब्रह्मलोकमें जानेका मार्ग है। गंगाका जल यदि माघमासमें सुलभ हो तो वह पापरूपी ईंधनको जलानेके लिये दावानल, गर्भवासके कष्टका नाश करनेवाला तथा विष्णुलोक एवं मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला बताया गया है।

इतना ही नहीं, स्वर्गवासी देवता सदा यह गाया करते हैं कि 'क्या प्रयागमें कभी माघमास हमें मिलेगा, जहाँ स्नान करनेवाले मानव फिर कभी गर्भकी वेदनाका अनुभव नहीं करते और भगवान् विष्णुके समीप स्थित होते हैं।' जल और वायु पीकर रहने, पत्ते चबाने, देह सुखाने, दीर्घकालतक घोर तपस्या करने और योग साधनेसे मनुष्य जिस गतिको प्राप्त होते हैं, उसे प्रयागके स्नानमात्रसे ही पा लेते हैं।

प्रयागमण्डलका विस्तार पाँच योजन है। वहाँ तीन कुण्ड हैं। उनके बीचमें गंगा हैं। प्रयागमें प्रवेश करनेमात्रसे पापोंका तत्काल नाश हो जाता है। जो पवित्र है, वह मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर, हिंसासे दूर हो यदि श्रद्धापूर्वक स्नान करता है तो पापमुक्त होता है और परमपदको प्राप्त करता है। नैमिष, पुष्कर, गोतीर्थ, सिन्धु-सागरसंगम, गया, धेनुक और गंगा-सागरसंगम—ये तथा और भी जो बहुत-से पुण्यमय पर्वत हैं, वे सब मिलकर तीन करोड़ दस हजार तीर्थ प्रयागमें विद्यमान हैं। सूर्यपुत्री यमुना-देवी तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। वे लोकपावनी यमुना प्रयागमें गंगासे मिली हैं। गंगा और यमुनाके बीचका भू-भाग पृथ्वीपर सर्वोत्तम माना गया है। तीनों लोकोंमें प्रयागसे बढ़कर परम पवित्र तीर्थ नहीं है। प्रयाग परमपदस्वरूप है। उसका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं।

सम्पूर्ण देवताओंसे सुरक्षित प्रयागतीर्थमें जाकर जो ब्रह्मचर्यका पालन तथा देवता और पितरोंका तर्पण करते हुए एक मासतक वहाँ निवास करता है, वह जहाँ कहीं भी रहकर सम्पूर्ण मनोवांछित कामनाओंको

प्राप्त कर लेता है। गंगा और यमुनाका संगम सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात है। वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे जिसके-जिसके मनमें जो-जो कामना होती है, उसकी वह कामना अवश्य पूर्ण हो जाती है। हरिद्वार, प्रयाग और गंगा-सागरसंगममें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य अपनी रुचिके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवके धाममें चला जाता है। माघमासमें सितासितसंगमके जलमें जो स्नान किया जाता है, वह सौ कोटि कल्पोंमें भी कभी पुनरावृत्तिका अवसर नहीं देता।

प्रयागके ही अन्तर्गत प्रतिष्ठानपुर (झूँसी)-में एक अत्यन्त विख्यात कूप है। वहाँ मनको संयममें रखकर स्नान करनेके पश्चात् देवताओं और पितरोंका तर्पण करे और ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए क्रोधको जीते। इस प्रकार जो तीन रात वहाँ निवास करता है, वह सब पापोंसे शुद्धचित्त हो अश्वमेध-यज्ञका फल पाता है। प्रतिष्ठानसे उत्तर और भागीरथीसे पूर्व हंसप्रतपन नामक लोकविख्यात तीर्थ है। वहाँ स्नान करनेमात्रसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है और जबतक चन्द्रमा और सूर्य रहते हैं, तबतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर वासुकि नागसे उत्तर भोगवतीके पास जाकर दशाश्वमेधतीर्थ है। वह परम उत्तम माना गया है। वहाँ स्नान करके मनुष्य अश्वमेध-यज्ञका फल पाता है और इहलोकमें धनाढ्य, रूपवान्, दक्ष, दाता एवं धार्मिक होता है। चारों वेदोंका स्वाध्याय करनेवाले पुरुषोंको जो पुण्य प्राप्त होता है, सत्यवादियोंको जो फल मिलता है और अहिंसाके पालनसे जो धर्म होता है, उन सबका फल दशाश्वमेधतीर्थमें जानेमात्रसे मिल जाता है। पायसीके उत्तर और प्रयागके दक्षिण तटपर ऋणमोचन नामक तीर्थ है, जो परम उत्तम माना गया है। वहाँ स्नान करके एक रात रहनेसे मनुष्य सब ऋणोंसे मुक्त हो जाता है और देवता होकर स्वर्गलोकमें जाता है।

प्रयागमें मुण्डन कराना अत्यावश्यक होता है, क्योंकि मनुष्योंके सब पाप केशोंकी जड़का आश्रय लेकर टिके रहते हैं। अतः प्रयागतीर्थमें स्नान करनेके पहले मुण्डन करा लेना चाहिये। यदि पौष और माघके महीनेमें श्रवण नक्षत्र, व्यतिपातयोग तथा रविवारसे युक्त अमावास्या तिथि हो तो उसे अर्घोदयपर्व समझना चाहिये। इसका महत्त्व सौ सूर्यग्रहणोंसे भी अधिक होता है।

यदि प्रयागतीर्थमें अरुणोदयके समय माघ शुक्ला सप्तमी प्राप्त हो तो वह एक हजार सूर्यग्रहणोंके समान है। यदि अयनारम्भके दिन प्रयागका स्नान मिले तो कोटि गुना पुण्य होता है और विषुवयोगमें लाख गुने फलकी प्राप्ति होती है। षडतीति तथा विष्णुपदीमें सहस्र गुना पुण्य प्राप्त होता है। अपने वैभव-विस्तारके अनुसार सबको प्रयागमें दान करना चाहिये, इससे तीर्थका फल बढ़ता है।

जो गंगा और यमुनाके संगमपर कन्यादान करता है, वह उस पुण्यकर्मके प्रभावसे कभी भयंकर नरकका दर्शन नहीं करता। प्रयाग-प्रतिष्ठानसे लेकर वासुकि नागके तालाबसे आगेतक कम्बल और अश्वतर नामक जो दोनों नाग हैं, वहाँसे बहुमूलक नागतकका जो भू-भाग है, यही प्रजापति-क्षेत्र है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। इस क्षेत्रमें जो स्नान करते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं और जो मर जाते हैं, उनका फिर जन्म नहीं होता। सन्मार्गमें स्थित बुद्धिमान् योगीको जो गति प्राप्त होती है, वही गंगा-यमुनाके संगममें प्राणत्याग करनेवालेको भी मिलती है।

प्रयागके दक्षिण यमुना-तटपर विख्यात अग्नितीर्थ है। पश्चिममें धर्मराजतीर्थ है। वहाँ जो स्नान करते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं और जो मरते हैं, उनका फिर संसारमें जन्म नहीं होता। यमुनाके उत्तर तटपर बहुत-से पापनाशक तीर्थ हैं, जो बड़े-बड़े मुनीश्वरोंसे सेवित हैं, उनमें स्नान करनेवाले स्वर्गलोकको जाते हैं और जो मर जाते हैं उनका मोक्ष हो जाता है। गंगा और यमुना दोनोंका पुण्यफल एक समान है। केवल जेठी होनेसे गंगा सर्वत्र पूजी जाती हैं।

पद्मपुराणमें प्रयागतीर्थकी महिमाके विषयमें एक बहुत ही सुन्दर कथा आयी है जो इस प्रकार है—

नर्मदा नदीके किनारे माहिष्मतीपुरीमें एक रूप-यौवन-सम्पन्ना, नाच-गानमें निपुण मोहिनी नामकी वेश्या रहती थी। धनके लोभमें उसने अनेक महापाप किये थे। वृद्धावस्था आनेपर उसको सुबुद्धि आयी और उसने अपना धन बगीचे, पोखरे, बावली, कुआँ, देवमन्दिर और धर्मशाला बनवानेमें लगाया। यात्रियोंके लिये भोजन और जगह-जगह जलकी भी व्यवस्था की। एक बार वह बीमार पड़ी। अपना सारा धन ब्राह्मणोंको

देना चाहा, पर ब्राह्मणोंके न लेनेपर उसने एक भाग अपनी दासियोंको और दूसरा परदेशी यात्रियोंको दे दिया। स्वयं निर्धन हो गयी। इस समय जरद्गवा नामक मोहिनीकी एक सखी उसकी सेवा करती थी। भाग्यवश कुछ दिनोंमें वह अच्छी हो गयी, पर निर्धनताकी अवस्थामें जरद्गवाके घर रहनेमें उसे बड़ा संकोच हुआ और वह घरसे निकल गयी।

एक दिन मोहिनी वनके मार्गसे जा रही थी। चोरोंने उसके पास धन समझकर लोभसे उसे मार दिया। पर जब धन नहीं मिला, तब वे उसे वनमें ही छोड़कर चल दिये। अभी मोहिनीकी साँस चल रही थी, उसी समय एक वानप्रस्थी महात्मा इस प्रयागके जलको कमण्डलुमें लिये वहाँ आ पहुँचे और तीर्थकी महिमा कहते हुए उन्होंने मोहिनीके मुखमें वह जल डाल दिया। उस समय मोहिनीके मनमें किसी राजाकी महारानी बननेकी इच्छा थी। मुँहमें प्रयागका जल पड़ते ही मोहिनी मर गयी और दूसरे जन्ममें वह द्रविण देशमें राजा वीरवर्माकी हेमांगी नामक महारानी हुई। राजमन्त्रीकी लड़की कला उसकी सखी थी। एक दिन हेमांगी कलाके घर गयी और कलाने एक सोनेकी पेटीमें उसे एक विचित्र पुस्तक दिखायी, जिसमें अवतारोंके चित्रोंके साथ-साथ सारे भूगोलका मानचित्र था। मानचित्र देखते-देखते हेमांगीकी दृष्टि इस प्रयागतीर्थपर पड़ी और उसे तुरन्त अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया! तदनन्तर उसने घर लौटकर अपने पतिसे पूर्वजन्मकी सारी घटनाएँ सुनाकर प्रार्थना की कि 'नाथ! मैं उस तीर्थ-जलके प्रसादसे ही आपके घरकी रानी बनी हूँ। इस समय आपके साथ चलकर तीर्थराज प्रयागका दर्शन करना चाहती हूँ। जब मैं उस तीर्थराजके लिये चल पड़ूँगी तभी अन्न-जल ग्रहण करूँगी।' राजाके पूरा विश्वास न करनेपर उसी समय आकाशवाणीने कहा—'राजन्! तुम्हारी पत्नीका कथन सत्य है। परम पवित्र प्रयागतीर्थमें जाकर तुम स्नान करो। इससे तुम्हारी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो जायँगी।' तब तो राजा आकाशवाणीको नमस्कार करके मन्त्रीको सारा भार सौंप, हेमांगीके साथ चल पड़े और कुछ दिनोंमें प्रयागमें आ पहुँचे। 'इस प्रयागस्नानके पुण्यसे हमपर भगवान् विष्णु प्रसन्न हों'—इस इच्छासे तीर्थमें स्नान करते ही भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी क्रमशः गरुड़ और हंसपर बैठे हुए वहाँ आ पहुँचे। राजा वीरवर्माने मस्तक

झुकाकर भगवान्‌के दोनों स्वरूपोंको प्रणाम किया और एकाग्रचित्तसे उनकी विलक्षण स्तुति की। फिर हेमांगीने उनका स्तवन करके मनोरथ पूर्ण करनेकी प्रार्थना की। भगवान् विष्णु और ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर हेमांगीकी बड़ी प्रशंसा की और फिर दोनोंको अपने साथ सत्यलोकमें ले गये।

❑❑

अवन्तिका-माहात्म्य

आधुनिक लोग अवन्तिकापुरीको उज्जैन कहते हैं। उज्जैनका दूसरा नाम महाकालपुरी भी है। महाकालपुरीका नाम प्रत्येक युगमें परिवर्तित होता रहता है। इसके सम्बन्धमें कहा गया है—

कल्पे कल्पेऽखिलं विश्वं कालयेद्यः स्वलीलया।
तं कालं कलयित्वा यो महाकालोऽभवत्किल॥

(स्क०, का० ख० ७। ९१)

इस स्थानको पृथ्वीका नाभिदेश कहा गया है। द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें महाकाल लिंग यहीं है और इक्यावन शक्तिपीठोंमें यहाँ एक शक्तिपीठ भी है। द्वापरमें श्रीकृष्ण-बलराम यहीं महर्षि सांदीपनिके आश्रममें अध्ययन करने आये थे। महाराज विक्रमादित्यके समयमें उज्जयिनी भारतकी राजधानी थी। भारतीय ज्यौतिषशास्त्रमें देशान्तरकी शून्य रेखा उज्जयिनीसे प्रारम्भ हुई मानी जाती थी। यह सप्तपुरियोंमें एक पुरी है। यहाँ बारहवें वर्षमें कुम्भका मेला लगता है।

नारदपुराणका कथन है कि अवन्तीतीर्थका तथा देववन्द्य भगवान्‌का माहात्म्य अपार है। महाकाल वन परम पवित्र एवं परम उत्तम तपोभूमि है। महाकाल वनसे बढ़कर दूसरा कोई क्षेत्र इस पृथ्वीपर नहीं है। यहाँ कपालयोग नामक तीर्थ है, जिसमें भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे ब्रह्महत्यारा मनुष्य भी शुद्ध हो जाता है।

अवन्तीके प्रत्येक कल्पमें भिन्न-भिन्न नाम होते हैं। यथा—कनकशृंगा, कुशस्थली, अवन्तिका, पद्मावती, कुमुद्वती, उज्जयिनी, विशाला और अमरावती। जो मनुष्य शिप्रा नदीमें स्नान करके भगवान् महेश्वरका पूजन करता है, वह महादेवजी तथा महादेवीकी कृपासे सम्पूर्ण कामनाओंको पा लेता है।

शिप्रा नदी सर्वत्र पुण्यदायिनी, अतिशय पवित्र तथा पापहारिणी है।

परन्तु अवन्तीपुरीमें उसका महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। पूर्वकालमें भगवान् विष्णुके जय और विजय नामवाले दो द्वारपाल थे। वे दोनों सदा वैकुण्ठके द्वारपर खड़े रहते थे। एक समय ब्रह्माजीके मानसपुत्र सनकादि स्वेच्छासे विष्णुके परमधाममें पधारे। द्वारपर आते ही द्वारपालोंने सहसा रोक दिया। द्वारपालोंके इस बर्तावसे सनकादिकोंको बड़ा दुःख हुआ। परिणामतः उन मुनिकुमारोंने जय-विजयको असुर होनेका शाप दे दिया।

सनकादिकुमारोंके द्वारा शापित होकर वे दोनों जय और विजय तत्काल आसुरी योनिमें चले गये। वे दोनों प्रथम जन्ममें हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष, दूसरे जन्ममें कुम्भकर्ण तथा रावण और तीसरे जन्ममें दन्तवक्त्र एवं शिशुपाल कहलाये। हिरण्याक्ष नामक दैत्य बड़ा बलवान् था। उसके अत्याचारोंसे चारों ओर हाहाकार मच गया। वह पृथ्वीको रसातल लेकर चला गया।

संसारकी ऐसी दुरवस्था देख भगवान् महाविष्णुने वाराहरूपसे प्रकट होकर पृथ्वीका उद्धार किया। फलस्वरूप चारों दिशाओंमें जो कोलाहल होते रहते थे, वे सब शान्त हो गये। उन्हीं भगवान् वाराहके हृदयसे यह सनातन नदी शिप्रा प्रकट हुई है, जो आनन्दमय जलसे परिपूर्ण तथा आनन्ददायक वर देनेवाली है। रमणीय महाकाल वनमें एक परम सुन्दर पद्मावतीपुरी है। उस पुरीमें परम रम्य एक सुन्दर कुण्ड है। उसमें स्नान करके सब मनुष्य सनातन शिवलोकको जाते हैं। उसी सुन्दर वनमें लोकपावनी शिप्रा लीन हुई है।

भगवान् वाराहने समस्त दुष्ट राक्षसोंका संहार करके जब देवताओंको निर्भय कर दिया तब इन्द्र आदि सब देवताओंने हाथ जोड़कर उन महाविष्णुको नमस्कार किया और सामने खड़े होकर स्वर्ग-प्राप्तिका उपाय पूछा। देवताओंको आश्वस्त करते हुए भगवान् वाराहने कहा—'देवताओ! महाकाल वनमें तुम्हारी मनोरथ-सिद्धिका कारणभूत गुह्यसे भी गुह्य पुण्य-स्थान है। जहाँ मेरे शरीरसे उत्पन्न हुई शिप्रा नदी लीन हुई है, वह स्थान लीनगंगाके नामसे विख्यात है। जहाँ सरिताओंमें श्रेष्ठ लीनगंगा, प्राची, सरस्वती, पुष्कर, गयातीर्थ तथा शुभ पुरुषोत्तम सरोवर है, उस शिप्रा नदीको जाओ।

भगवान् वाराहका यह वचन सुनकर ब्रह्मा-इन्द्रादि सब देवता परम सुन्दर महाकाल वनमें, जहाँ सरिताओंमें श्रेष्ठ शिप्रा बहती है, गये। वहाँ स्नान-

दानादि शुभकर्म करके उस पुण्यके प्रभावसे वे अपने-अपने लोकको प्राप्त हुए। इस प्रकार शिप्रा नदी सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाली बतायी गयी है। स्कन्दपुराण आवन्त्यखण्ड-अवन्ती-क्षेत्र-माहात्म्यमें वर्णन आया है—

महाकालः सरिच्छिप्रा गतिश्चैव सुनिर्मला।
उज्जयिन्यां विशालाक्षि वासः कस्य न रोचयेत्॥
स्नानं कृत्वा नरो यस्तु महानद्यां हि दुर्लभम्।
महाकालं नमस्कृत्य नरो मृत्युं न शोचयेत्॥
मृतः कीटः पतङ्गो वा रुद्रस्यानुचरो भवेत्॥

'जहाँ भगवान् महाकाल हैं, शिप्रा नदी है और सुनिर्मल गति मिलती है, उस उज्जयिनीमें भला, किसे रहना अच्छा न लगेगा। महानदी शिप्रामें स्नान करके, जो कठिनाईसे मिलता है, तथा महाकालको नमस्कार कर लेनेपर फिर मृत्युकी कोई चिन्ता नहीं रहती। कीट या पतंग भी मरनेपर रुद्रका अनुचर होता है।'

अवन्तिका-माहात्म्यके सम्बन्धमें स्कन्दपुराणकी स्पष्ट मान्यता है—

विपन्नो यत्र वै जन्तुः प्राप्यापि शवतां स्फुटम्।
न पूतिगन्धमाप्नोति समुच्छ्रयति न क्वचित्॥
यमदूता न यस्यां हि प्रविशन्ति कदाचन।
परः कोटीनि लिङ्गानि तस्यां सन्ति पदे पदे॥
हाटकेशो महाकालस्तारकेशस्तथैव च।
एकं लिङ्गं त्रिधा भूत्वा त्रिलोकीं व्याप्य संस्थितम्॥
ज्योतिः सिद्धवटे ज्योतिस्ते पश्यन्तीह ये द्विजाः।
अथवा श्रीमहाकालद्रष्टारः पुण्यराशयः॥
महाकालस्य तल्लिङ्गं यैर्दृष्टं कष्टिभिः क्वचित्।
न स्पृष्टास्ते महापापैर्न दृष्टास्ते यमोद्भटैः॥
महाकाल महाकाल महाकालेति सन्ततम्।
स्मरतः स्मरतो नित्यं स्मरकर्तृस्मरान्तकौ॥

(काशीखण्ड ७। ९३—९७, ९९)

'उज्जयिनीमें प्राणी मरकर शव होनेपर भी न तो दुर्गन्धको प्राप्त होता है और न सड़ता ही है। वहाँपर कभी भी यमदूत प्रवेश नहीं करते और वहाँपर करोड़ों शिव पद-पदपर वर्तमान हैं। एक ही ज्योतिर्लिंग हाटकेश,

महाकाल और तारकेश्वर—इन तीनों रूपोंसे त्रैलोक्यमें व्याप्त होकर स्थित है। जो द्विजातिगण इस उज्जयिनी सिद्धवटमें ज्योतिःस्वरूप ज्योतिर्लिंग अथवा श्रीमहाकालेश्वरके दर्शन करते हैं, वे पुण्यराशि परं ज्योतिको देख लेते हैं। संसारके जिन दीन-दुःखियोंने कभी भी महाकालेश्वरके लिंगका दर्शन किया है, उन्हें न तो महापाप छूते हैं और न यमदूतगण ही सताते हैं। महाकाल, महाकाल, महाकाल—इस प्रकार सर्वदा स्मरण करनेवालेको कामदेवके पिता (विष्णु) और शत्रु (शिव)—ये दोनों स्मरण करते रहते हैं।'

स्कन्दपुराणमें अवन्तीक्षेत्र-माहात्म्यके अन्तर्गत शिप्रा-माहात्म्यकी एक बहुत ही सुन्दर कथा मिलती है। एक समयकी बात है, भगवान् शिव हाथमें कपाल लेकर नागलोकको भोगवतीपुरीमें भिक्षाके लिये गये और घर-घर घूमकर उन्होंने '**भिक्षां देहि**' (भिक्षा दो)-की रट लगायी। किन्तु उन भूखे भगवान् शिवको किसीने भी भिक्षा नहीं दी। तब वे पुरीसे बाहर निकले और उस स्थानपर गये, जहाँ नागलोकके संरक्षणमें अमृतके इक्कीस कुण्ड भरे हुए थे। वहाँ पहुँचकर सर्वान्तर्यामी भगवान् शंकरने अपने तृतीय नेत्रके मार्गसे अमृतके समस्त कुण्डोंको पी लिया और फिर वहाँसे उठकर चल दिये। यह सब देख-सुनकर समस्त नागलोक काँप उठा और सब एक-दूसरेसे पूछने लगे, 'यह किसका कर्म है? किसने क्या कर दिया है, जिससे इन कुण्डोंका अमृत यहाँसे चला गया?'

परस्पर ऐसा कहकर वासुकि आदि सभी नाग किसी महात्माका अपराध हो जानेकी आशंकासे नगर छोड़कर बाहर निकले और 'क्या करें, कहाँ जायँ? अब हमारा जीवन-निर्वाह कैसे होगा?' इत्यादि रूपसे चिन्ता प्रकट करते हुए स्त्री-बालकोंके साथ वे मन-ही-मन भगवान् श्रीहरिकी शरणमें गये। तब उनपर अनुग्रह करनेके लिये आकाशवाणी हुई—'नागगण! तुमलोगोंने घरपर आये हुए देवताका अपमान किया, अतिथि-सत्कारका समय जानकर हाथमें कपाल लिये भिक्षुके वेषमें भिक्षा लेनेके लिये साक्षात् भगवान् शंकर तुम्हारे द्वारपर आये थे। परन्तु भोगवतीपुरीमें किसीने भी उनको भिक्षा नहीं दी, तब वे बाहर चले गये हैं। इसी व्यतिक्रमके कारण तुम्हारे कुण्डोंका सम्पूर्ण अमृत नष्ट हो गया है। अब तुमलोग पातालसे निकलकर उत्तम महाकाल वनमें जाओ। वहाँ तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली श्रेष्ठ नदी शिप्रा बहती है, जो समस्त

कामनाओं और फलोंको देनेवाली है। वहाँ जाकर तुम सब लोग विधिपूर्वक स्नान और देवाधिदेव भगवान् शिवका भजन करो। ऐसा करनेपर नागलोकमें तुम्हारी नष्ट हुई अमृतराशि पुनः प्राप्त हो जायगी।'

इस आकाशवाणीको सुनकर सब नाग स्त्री-बालक और वृद्धोंके साथ महाकाल वनमें गये। उन्होंने उस त्रिभुवन-वन्दिता शिप्रा नदीका दर्शन किया। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और वहाँ स्नान-दानादि करके उन्होंने महादेवजीकी आराधना की। कभी मलिन न होनेवाली कमलपुष्पोंकी माला, नाना प्रकारके फूल, अक्षत, वस्त्र, पुष्पहार, अनुलेपन, चन्दन, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, दक्षिणा और कपूरकी आरती आदि पूजनसामग्री लेकर वे सब-के-सब महादेवजीकी सेवामें उपस्थित हुए।

❑❑

नासिक-माहात्म्य

नासिकको गोदावरी, पंचवटी और गौतमी आदि नामोंसे भी जाना जाता है। जहाँ लक्ष्मणजीने रावणकी बहिन शूर्पणखाकी नाक काटी थी और जहाँ सीताहरण हुआ था, वह स्थान नासिक पंचवटीके नामसे प्रसिद्ध है। नासिक पंचवटीसे थोड़ी दूर भगवान् त्र्यम्बकेश्वरका स्थान है। यहाँके निकटवर्ती ब्रह्मगिरि नामक पर्वतसे पूतसलिला गोदावरी निकलती हैं। जो माहात्म्य उत्तर भारतमें पाप-विमोचिनी गंगाका है, वही दक्षिणमें गोदावरीका है। दक्षिणमें यह गंगा नामसे ही प्रख्यात है। जैसे इस पृथ्वीपर गंगावतरणका श्रेय तपस्वी भगीरथको है, वैसे ही गोदावरीका प्रवाह ऋषिश्रेष्ठ गौतमकी घोर तपस्याका फल है, जो उन्हें भगवान् आशुतोषसे प्राप्त हुआ था।

भगीरथके प्रयत्नसे भूतलपर अवतरित हुई माता गंगा जैसे भागीरथी कहलाती हैं, वैसे ही गौतम ऋषिकी तपस्याके फलस्वरूप आयी हुई गोदावरीका दूसरा नाम गौतमी है। इनकी भी महिमा बहुत अधिक है। बृहस्पतिके सिंह राशिमें आनेपर यहाँ बड़ा भारी कुम्भका मेला लगता है। इस कुम्भके अवसरपर गोदावरी-स्नानका बड़ा भारी माहात्म्य है। इन्हीं पुण्यतोया गोदावरीके उद्‌गम स्थानके समीप स्थित त्र्यम्बकेश्वरभगवान्‌की भी बड़ी महिमा है। गौतम ऋषि तथा गोदावरीके प्रार्थनानुसार भगवान् शिवने इस स्थानमें निवास करनेकी कृपा की और त्र्यम्बकेश्वर नामसे विख्यात हुए।

मन्दिरके अन्दर एक छोटे-से गड्ढेमें तीन छोटे-छोटे लिंग हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों देवोंके प्रतीक माने जाते हैं। शिवपुराणके अनुसार त्र्यम्बकेश्वरके दर्शन और पूजन करनेवालेका इस लोक और परलोकमें सदा आनन्द रहता है। ब्रह्मगिरि पर्वतके ऊपर जानेके लिये चौड़ी-चौड़ी सात सौ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इन सीढ़ियोंपर चढ़नेके बाद 'रामकुण्ड' और 'लक्ष्मणकुण्ड' मिलते हैं और शिखरके ऊपर पहुँचनेपर गोमुखसे निकलती हुई भगवती गोदावरीके दर्शन होते हैं।

नासिक-माहात्म्यके वर्णन-प्रसंगमें शिवपुराण, रुद्रसंहिता, अध्याय चौबीसमें कहा गया है—

तद्दिनं हि समारभ्य सिंहस्थे च बृहस्पतौ।
आयान्ति सर्वतीर्थानि क्षेत्राणि दैवतानि च॥
सरांसि पुष्करादीनि गंगाद्यास्सरितस्तथा।
वासुदेवादयो देवाः सन्ति वै गौतमीतटे॥

इसका आशय है कि सिंहके बृहस्पतिमें सम्पूर्ण देवता तथा तीर्थ पुष्कर आदि सरोवर, गंगा आदि नदियाँ, वासुदेव आदि अनेक देवता गौतमी (नासिक)-में निवास करते हैं।

गोदावरीमें सिंहस्थ पर्वके समय देव, दानव, यक्ष और मनुष्यादि जो कोई गौतमी गंगाका स्नान तथा पान करेगा वह समस्त संकटोंसे मुक्त होकर सर्वविजयी होगा। सिंहस्थ गुरुके समय गोदावरीमें विधिपूर्वक स्नान, पूजा, पाठ तथा दान करनेसे मोक्षपदकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य गोदावरीमें कुम्भ-पर्वके समय 'इन्द्रतीर्थ' में स्नान कर 'त्र्यम्बकेश्वर' के दर्शन करता है, वह समस्त पापोंसे छुटकारा प्राप्त कर 'इन्द्रलोक' में जाता है और जो कुम्भ-पर्वपर इन्द्रतीर्थमें स्नान-दानादि कर पितरोंका श्राद्ध-तर्पण करता है, वह पितृऋणसे मुक्त होकर अक्षयसुखकी प्राप्ति करता है।

रुद्रसंहिता, अध्याय सत्ताईसमें वर्णन आया है कि जो कोई कुम्भ-पर्वके अवसरपर सिंहस्थमें गोदावरीमें विधिपूर्वक स्नान तथा त्र्यम्बकका दर्शन करता है, उसे समस्त तीर्थोंके स्नानका तथा समस्त देवताओंकी आराधना एवं दर्शनका पुण्यफल प्राप्त होता है। साथ ही उस मनुष्यके समस्त पापोंकी निवृत्ति भी हो जाती है।

वैसे तो तीनों लोकोंमें व्याप्त रहनेवाली गोदावरीके स्नान, दर्शन एवं

निवासका सर्वदा विशेष महत्त्व रहता है, किन्तु सिंहस्थ कुम्भकालमें उसका विशेष महत्त्व बढ़ जाता है। इसका कारण यह है कि गोदावरी सिंहस्थ कुम्भ-कालमें अपने समस्त अंगोंको स्वर्ग और पातालसे खींचकर त्र्यम्बकक्षेत्र—गोदावरी (नासिक)-में निवास करती है। गोदावरी स्थित गौतमी गंगाके किनारेसे चारों ओर दस-दस योजनके अन्तरमें जो मनुष्य जन्म ग्रहण करता है, उसका पितरोंसहित उद्धार हो जाता है।

शिवपुराणमें तो गौतमी (गोदावरी)-के प्राकट्य तथा माहात्म्यका बड़ा ही सुन्दर आख्यान मिलता है, जिसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

पूर्वकालकी बात है, गौतम नामसे विख्यात एक श्रेष्ठ ऋषि रहते थे, जिनकी परम धार्मिक पत्नीका नाम अहल्या था। दक्षिण दिशामें जो ब्रह्मगिरि है, वहीं उन्होंने दस हजार वर्षोंतक तपस्या की थी। एक समय वहाँ सौ वर्षोंतक बड़ा भयानक अववर्षण हो गया। सब लोग महान् दुःखमें पड़ गये। इस भूतलपर कहीं गीला पत्ता भी नहीं दिखायी देता था। तब गौतम ऋषिने छः महीनेतक तप करके वरुणको प्रसन्न किया। वरुणने प्रकट होकर वर माँगनेको कहा—ऋषिने वृष्टिके लिये प्रार्थना की। वरुणने कहा—'देवताओंके विधानके विरुद्ध वृष्टि न करके मैं तुम्हारी इच्छाके अनुसार तुम्हें सदा अक्षय रहनेवाला जल देता हूँ। तुम एक गड्ढा तैयार करो।'

उनके ऐसा कहनेपर गौतमने एक हाथ गहरा गड्ढा खोदा और वरुणने उसे दिव्य जलके द्वारा भर दिया तथा परोपकारसे सुशोभित होनेवाले मुनिश्रेष्ठ गौतमसे कहा—'महामुने! कभी क्षीण न होनेवाला यह जल तुम्हारे लिये तीर्थरूप होगा और पृथ्वीपर तुम्हारे ही नामसे इसकी ख्याति होगी। यहाँ किये हुए दान, होम, तप, देवपूजन तथा पितरोंका श्राद्ध—सभी अक्षय होंगे।'

उस जलके द्वारा दूसरोंका उपकार करके महर्षि गौतमको भी बड़ा सुख मिला। गौतमजीके प्रभावसे उस वनमें सब ओर आनन्द छा गया।

एक बार वहाँ गौतमके आश्रममें जाकर बसे हुए ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ जलके प्रसंगको लेकर अहल्यापर नाराज हो गयीं। उन्होंने अपने पतियोंको उकसाया। उन लोगोंने गौतमका अनिष्ट करनेके लिये गणेशजीकी आराधना की। भक्तपराधीन गणेशजीने प्रकट होकर वर माँगनेके लिये कहा—तब वे बोले—'भगवन्! यदि आप हमें वर देना चाहते हैं तो कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे समस्त ऋषि डाँट-फटकारकर गौतमको आश्रमसे बाहर निकाल दें।'

दुष्ट ब्राह्मणोंकी बात सुनकर गणेशजीने उन्हें भाँति-भाँतिसे समझाते हुए कहा—ब्राह्मणो! इस समय तुम उचित कार्य नहीं कर रहे हो। बिना किसी अपराधके गौतमजीपर क्रोध करनेके कारण तुम्हारी हानि ही होगी। जिन्होंने पहले उपकार किया हो उन्हें यदि दुःख दिया जाय तो वह अपने लिये हितकारक नहीं होता। पहले उपवासके कारण जब तुमलोगोंको दुःख भोगना पड़ता था तब महर्षि गौतमने जलकी व्यवस्था करके तुम्हें सुख दिया। परन्तु इस समय तुम सब लोग उन्हें दुःख दे रहे हो। ऐसा करना उचित नहीं है। इसलिये तुमलोग कोई दूसरा वर माँगो। किन्तु ब्राह्मणोंने गणेशजीकी बात नहीं मानी तब भक्तोंके अधीन होनेके कारण उन शिवकुमारने कहा—'तुमलोगोंने जिस वस्तुके लिये प्रार्थना की है, उसे मैं अवश्य करूँगा, पीछे जो होनहार होगी होकर ही रहेगी।' ऐसा कहकर वे अन्तर्धान हो गये।

उसके बाद उन दुष्ट ऋषियोंके कुचक्रसे तथा उन्हें प्राप्त हुए वरके कारण एक दिन गौतमजीके खेतमें गणेशजी एक दुर्बल गाय बनकर गये। दिये हुए वरके कारण वह गौ काँपती हुई वहाँ जौ आदि चरने लगी। इसी समय दैववश गौतमजी वहाँ आ गये तथा मुट्ठीभर तिनकेसे उस गौको हाँकने लगे। उन तिनकोंका स्पर्श होते ही वह गौ पृथ्वीपर गिर पड़ी और ऋषिके देखते-देखते उसी क्षण मर गयी।

वे द्वेषी ब्राह्मण और उनकी दुष्ट स्त्रियाँ वहाँ छिपकर सब कुछ देख रहे थे। उस गौके गिरते ही वे सब बोल उठे—'गौतमने यह क्या कर डाला?' गौतम भी आश्चर्यचकित हो अहल्याको बुलाकर दुःखपूर्वक बोले—'देवि! यह क्या हुआ, कैसे हुआ? जान पड़ता है भगवान् मुझपर कुपित हो गये हैं। अब क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मुझे हत्या लग गयी।'

तत्पश्चात् ब्राह्मण बोले—'अब तुम्हें अपना मुँह नहीं दिखाना चाहिये। गोहत्यारेका मुँह देखनेपर तत्काल वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये। जबतक तुम इस आश्रममें रहोगे तबतक अग्निदेव और पितर हमारे दिये हुए किसी भी हव्य-कव्यको ग्रहण नहीं करेंगे। इसलिये पापी, गोहत्यारे! तुम परिवारसहित यहाँसे अन्यत्र चले जाओ। विलम्ब न करो।'

तदनन्तर गौतम उस स्थानसे तत्काल निकल गये और उन सबकी आज्ञासे एक कोस दूर जाकर उन्होंने अपने लिये आश्रम बनाया। वहाँ भी जाकर उन ब्राह्मणोंने कहा—'जबतक तुम्हारे ऊपर हत्या लगी है,

तबतक तुम्हें कोई यज्ञ-यागादि कर्म नहीं करना चाहिये। किसी भी वैदिक देवयज्ञ या पितृयज्ञके अनुष्ठानका तुम्हें अधिकार नहीं रह गया है।' मुनिवर गौतम उनके कथनानुसार किसी तरह एक पक्ष बिताकर उस दुःखसे दुःखी हो बारम्बार उन मुनियोंसे अपनी शुद्धिके लिये प्रार्थना करने लगे। उनके दीनभावसे प्रार्थना करनेपर उन ब्राह्मणोंने कहा—'गौतम! तुम अपने पापको प्रकट करते हुए तीन बार सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करो। फिर लौटकर यहाँ एक महीनेतक व्रत करो। उसके बाद इस ब्रह्मगिरिकी एक सौ एक परिक्रमा करनेके पश्चात् तुम्हारी शुद्धि होगी। अथवा यहाँ गंगाजीको ले आकर उन्हींके जलसे स्नान करो तथा एक करोड़ पार्थिवलिंग बनाकर महादेवजीकी आराधना करो। फिर गंगामें स्नान करके इस पर्वतकी ग्यारह बार परिक्रमा करो। तत्पश्चात् सौ घड़ोंके जलसे पार्थिव शिवलिंगको स्नान करानेपर तुम्हारा उद्धार होगा।'

तत्पश्चात् उन ब्राह्मणोंकी आज्ञाको शिरोधार्य कर महर्षि गौतमने भगवान् शिवकी उपासना प्रारम्भ कर दिया। पत्नीसहित गौतम ऋषिकी आराधनासे सन्तुष्ट हुए भगवान् शिव वहाँ शिवा और प्रमथगणोंके साथ प्रकट होकर बोले—'महामुने! मैं तुम्हारी उत्तम भक्तिसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम कोई वर माँगो।' उस समय भगवान् शिवको प्रणाम करके मुनिने दोनों हाथ जोड़कर कहा—'देव! मुझे निष्पाप कर दीजिये।' इसपर भगवान् शिवने कहा—'मुने! तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो और सदा ही निष्पाप हो। इन दुष्टोंने तुम्हारे साथ छल किया है। वे सब-के-सब कृतघ्न हैं। उनका कभी उद्धार नहीं हो सकता।'

महादेवजीकी बात सुनकर महर्षि गौतमने कहा—'हे महेश्वर! उन ऋषियोंने मेरा बहुत बड़ा उपकार किया। यदि उन्होंने यह बर्ताव न किया होता तो मुझे आपका दर्शन कैसे होता। उनके इस दुराचारसे मेरा महान् स्वार्थ सिद्ध हुआ है। गौतमजीकी यह बात सुनकर महेश्वर बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'विप्रवर! तुम धन्य हो, सभी ऋषियोंमें श्रेष्ठतर हो। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे कोई दूसरा उत्तम वर माँगो।' इसपर गौतमजीने कहा—'हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे गंगा प्रदान कीजिये जिससे लोकका महान् उपकार हो सके। ऐसा वर माँगकर गौतमने शिवके दोनों चरणारविन्द पकड़ लिया। तब शिवने गंगासे कहा—'हे देवि! तुम मुनिको पवित्र करो और तुरन्त वापस न जाकर वैवस्वत

मनुके अठारहवें कलियुगतक यहीं रहो।' तब गंगाजीने कहा—'महेश्वर! यदि मेरा माहात्म्य सब नदियोंसे अधिक हो, अम्बिका तथा गणोंके साथ आप भी यहाँ रहें तभी मैं इस धरातलपर रहूँगी।'

गंगाजीकी बात सुनकर भगवान् शिव बोले—'गंगे! तुम धन्य हो। मेरी बात सुनो। मैं तुमसे अलग नहीं हूँ, तथापि मैं तुम्हारे कथनानुसार यहाँ स्थित रहूँगा।'

भगवान् शिवकी बात सुनकर गंगाजी मन-ही-मन प्रसन्न होकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगीं। इसी समय देवता, प्राचीन ऋषि, अनेक उत्तम तीर्थ और नाना प्रकारके क्षेत्र वहाँ आ पहुँचे। उन सबने बड़े आदरसे जय-जयकार करते हुए गौतम, गंगा तथा शिवका पूजन किया। तदनन्तर देवताओंने मस्तक झुकाकर तथा हाथ जोड़कर उनकी प्रसन्नतापूर्वक स्तुति की। उस समय प्रसन्न हुई गंगा और गिरीशने देवताओंको वर माँगनेके लिये कहा। तब देवता बोले—'देवेश्वर! यदि आप सन्तुष्ट हैं और सरिताओंमें श्रेष्ठ गंगे! यदि आप भी प्रसन्न हैं तो हमारा तथा मनुष्योंका प्रिय करनेके लिये आपलोग कृपापूर्वक यहाँ निवास करें।' इसपर गंगाजीने कहा—'देवताओ! फिर तो सबका प्रिय करनेके लिये आपलोग स्वयं ही यहाँ क्यों नहीं रहते? मैं तो गौतमजीके पापका प्रक्षालन करके जैसे आयी हूँ, उसी तरह लौट जाऊँगी। आपके समाजमें यहाँ मेरी कोई विशेषता समझी जाती है, इस बातका पता कैसे लगे? यदि आप यहाँ मेरी विशेषता सिद्ध कर सकें तो मैं अवश्य यहाँ रहूँगी—इसमें संशय नहीं है।'

गंगाजीकी बात सुनकर सब देवताओंने कहा—'सरिताओंमें श्रेष्ठ गंगे! सबके परम सुहृद् बृहस्पतिजी जब-जब सिंह राशिपर स्थित होंगे, तब-तब हम सब लोग यहाँ आया करेंगे, इसमें संशय नहीं है। ग्यारह वर्षोंतक लोगोंका जो पातक यहाँ प्रक्षालित होगा, उससे मलिन हो जानेपर हम उसी पापराशिको धोनेके लिये आदरपूर्वक तुम्हारे पास आयेंगे। हमने यह सर्वथा सच्ची बात कही है। सरिद्वरे! महादेवि! अतः तुमको और भगवान् शंकरको समस्त लोकोंपर अनुग्रह तथा हमारा प्रिय करनेके लिये यहाँ नित्य निवास करना चाहिये। गुरु (बृहस्पति) जबतक सिंह राशिपर रहेंगे, तभीतक हम यहाँ निवास करेंगे। उस समय तुम्हारे जलमें त्रिकालस्नान और भगवान् शंकरका दर्शन करके हम शुद्ध होंगे। फिर तुम्हारी आज्ञा लेकर अपने स्थानको लौटेंगे।'

इस प्रकार उन देवताओं तथा महर्षि गौतमके प्रार्थना करनेपर भगवान् शंकर और सरिताओंमें श्रेष्ठ गंगा—दोनों वहाँ स्थित हो गये। वहाँकी गंगा गौतमी (गोदावरी) नामसे विख्यात हुईं और भगवान् शिवका ज्योतिर्मय लिंग त्र्यम्बक कहलाया। यह ज्योतिर्लिंग महान् पातकोंका नाश करनेवाला है। उसी दिनसे लेकर जब-जब बृहस्पति सिंह राशिमें स्थित होते हैं, तब-तब सब तीर्थ, क्षेत्र, देवता, पुष्कर आदि सरोवर, गंगा आदि नदियाँ तथा श्रीविष्णु आदि देवगण अवश्य ही गौतमीके तटपर पधारते और वास करते हैं। वे जबतक गौतमीके किनारे रहते हैं, तबतक अपने स्थानपर उनका कोई फल नहीं होता। जब वे अपने लोकमें लौट आते हैं, तभी वहाँ इनके सेवनका फल मिलता है। यह त्र्यम्बक नामसे प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग गौतमीके तटपर स्थित है और बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। जो भक्तिभावसे इस त्र्यम्बक लिंगका दर्शन, पूजन, स्तवन एवं वन्दन करता है वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

❑❑

अमृत-संदेश

अमृत-कुम्भ-पर्व मनुष्यके जीवनमें कई प्रकारसे अमृतत्वका संचार करता है। ज्ञानके द्वारा बुद्धिमें, श्रद्धाके द्वारा मनमें, पवित्रता (स्नानादि)-के द्वारा शरीरमें, दानके द्वारा धनमें और वासना-शोधनके द्वारा समस्त लोक-व्यवहारमें एक उच्चकोटिका प्रकाश भर देता है, जिससे मनुष्यका जीवन उज्जवल बनकर कर्तव्य-पथकी ओर अग्रसर हो सके। इस प्रकार यह विराट् आयोजन अन्त:शुद्धिकी दृष्टिसे आध्यात्मिक, दैवप्रसादकी दृष्टिसे आधिदैविक एवं लोकचरित्रमें पवित्रताका संचार करनेके कारण आधिभौतिक शुद्धिका हेतु है।

मनुष्य मृत्युलोकका प्राणी होकर भी स्वभावत: अमरताका आकांक्षी है, किन्तु अज्ञानताके कारण वह यह नहीं जानता कि अमृतत्व सर्वत्र भरपूर है। कोई कण, कोई क्षण और कोई चित्त ऐसा नहीं है जिसके अन्तरालमें अमृतका परमानन्ददायी शान्तस्रोत न लहराता हो। अमृतत्व-प्राप्तिका वास्तविक तात्पर्य है—जीवनकी पूर्णता अर्थात् मानव-जीवनका सर्वांगीण विकास। यह प्रत्येक देशमें, प्रत्येक कालमें, प्रत्येक मनुष्यके लिये अपेक्षित है।

इस अपेक्षाकी पूर्तिमें इस अमृत-कुम्भ-पर्वका महान् योग और उपयोग है। इस दुर्लभ अमृतत्व एवं भगवत्तत्त्वका अनुभव तभी सम्भव है, जब अन्तःकरणकी निर्मलता और तीव्र ज्ञानदृष्टि रखते हुए गरुड़की भाँति भगवान्‌का दासत्व स्वीकार किया जाय। जबतक मनुष्य-हृदय गरुड़की भाँति भगवान्‌का वाहन अर्थात् कृपापात्र नहीं बन पायेगा तबतक अमृत उसके निकट रहते हुए भी उससे दूर रहेगा। इसकी उपलब्धि या अनुभवके लिये सारस्वत प्रयास करना होगा। यदि अमृतको पाना है तो हृदयस्थ कालुष्यको प्रयासपूर्वक मिटाकर प्रेमसे ओत-प्रोत अन्तःकरणके निर्माणकी भगीरथ साधना करनी होगी। तभी मानव-जीवनके परम पुरुषार्थ और अन्तिम लक्ष्य—अमृतत्व अर्थात् ईश्वरत्वको प्राप्त किया जा सकता है।

अन्तःपरिशुद्धि या चित्तनिर्माणके इस चिरन्तन सत्य और अमृतोपम संदेशको जन-जनतक पहुँचानेके उद्देश्यसे ही हमारे महान् दार्शनिक, तपःपूत ऋषियोंने लोक-कल्याण तथा लोक-मंगलकी पावन भावनासे प्रेरित होकर प्रति बारहवें वर्ष शास्त्रानुमोदित हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक—इन चार पवित्र तीर्थस्थानोंमें महाकुम्भपर्वके आयोजनका विधान किया।

शताब्दियोंसे अपनी निरन्तरताको अक्षुण्ण रखते हुए यह महापर्व अपनी सर्वमान्य महत्ता और विराट्-स्वरूपकी विशालताके साथ कोटिजनोंको धर्म-संस्कृतिसे आजतक जोड़ता चला आ रहा है। मानव-जीवनमें आलोक और अन्तश्चेतनाका संचार करनेवाला यह एक ऐसा महान् सांस्कृतिक समागम है, जो न केवल आध्यात्मिक चेतना अपितु राष्ट्रीय चेतना, एकता और अखण्डताका आधार-स्तम्भ भी है। विराट् महाकुम्भ-पर्वका यह आध्यात्मिक, दार्शनिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व एवं उद्देश्य मानवमात्रमें विश्व-बन्धुत्व, विश्व-प्रेमकी शुभ भावनाके साथ जीवनके नैतिक मूल्यों तथा आदर्शोंके रक्षण-हेतु निरन्तर विश्व-मंगलकी ओर बढ़ते रहनेका शुचि, सार्थक एवं मंगल प्रयास है। यही इस अनुपमेय आयोजनका वास्तविक प्राप्तव्य है और यही वास्तविक साफल्य है। इसी शुभ भावनाके साथ—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

❑❑